भारतीय कृषि पर
जीनान्तरित बीज का खतरा

सम्पर्क म.प्र.

भारतीय कृषि पर

जीनान्तरित बीज का खतरा

भारतीय कृषि पर

जीनान्तरित बीज का खतरा

सम्पर्क म.प्र.

संकल्पना :
निलेश देसाई

अनुवाद :
सोमित्र राय

सम्पादन :
हरिशंकर पंवार और मणिमाला

टाइपिंग :
अखिलेश रोड़ेकर

सहयोग :
स्वीस एड इण्डिया

प्रकाशक :
सम्पर्क म.प्र., सम्पर्क ग्राम रायपुरिया
जिला-झबुआ, म.प्र. 457775, फोन : 07391-280185
e-mail : smp_mp@yahoo.co.in
और
मीडिया फॉर चेंज, 18 पंचमहल, प्लॉट नं. 47, इन्द्रप्रस्थ एक्सटेंशन
पटपड़गंज, दिल्ली-110 092, मो. 9810841159

सहयोग राशि :
50.00 रुपये

अनुक्रम

प्राक्कथन 7

1. जेनेटिक इंजीनियरिंग (जीई) क्या है? 9
2. जीई के पीछे का विज्ञान? क्या यह भरोसेमंद है? 14
3. कृषि क्षेत्र में अन्य प्रजनन तकनीकों और जीई में फर्क? 18
4. जीई तकनीक और खाद का उपयोग 23
5. जीई फसलें और खाद्यान्न 27
6. जीई और आनुवांशिकीय नुकसान 34
7. जीई और दुनियावी हालात 47
8. भारत में जीई 54
9. एक अभियान बी.टी. कपास के विरूद्ध 91
10. आप/हम क्या कर सकते हैं? 95

सम्पर्क के बारे में

सम्पर्क म.प्र. एक स्वयं सेवी संस्था है जो गत दो दशकों से झाबुआ जिले के आदिवासियों एवं कमजोर वर्ग के ग्रामीणों के साथ मिलकर उनके सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए प्रयास कर रही है। सम्पर्क की गतिविधियां मूलतः ग्रामीणों को स्वावलम्बी बनाने, उनकी सामाजिक सुपरम्पराओं को पुर्नस्थापित करने, रूढ़ियों से बचाने एवं रोजगारोन्मुखी शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका के अलावा पानी मिट्टी जैसी प्राकृतिक सम्पदा को बचाने के मुद्दों पर केन्द्रित है।

सम्पर्क ने बीते वर्षों में पश्चिमी म.प्र. के आदिवासी अंचल में छोटे किसान, मजदूर, आदिवासी तथा आर्थिक रूप से कमजोर एवं वंचित वर्ग के लोगों को अधिकार सम्पन्न बनाने के लिए कई स्तरों पर कार्य किया है। रोजगार गारंटी कानून के सुचारू क्रियान्वयन, किसानी कर्ज से मुक्ति, जल के व्यापारीकरण पर रोक, प्राकृतिक संसाधनों के सहभागी संरक्षण एवं भारतीय कृषि पर जैव तकनीक का हमला आदि मुद्दों पर आम लोगों की समझ बनाने का काम किया है। जनहित में यह काम लगातार जारी है।

प्राक्कथन

भारतीय कृषि के उजाड़ हो जाने के तमाम खतरों के बीच हमारे नीति नियंताओं का कहना है कि हम कृषि के मामले में तरक्की कर रहे हैं। जब खेती की लागत लगातार बढ़ रही हो, जब कृषि का समूचा तंत्र बाजार पर निर्भर हो गया हो और जब किसान कर्ज के दलदल में फंस कर आत्महत्याएं कर रहे हों तब ऐसा कहा जाना अपनी ही जड़ों पर प्रहार करना है। किसान का लुटना–पिटना सत्ता प्रतिष्ठानों के लिए, संसद के लिए, मीडिया के लिए, किसी के लिए भी महत्वपूर्ण, गंभीर नहीं है। तथाकथित जैवपरिवर्धन तकनीक के जरिए भारत में कृषि को उन्नत बनाने का दावा करने वाले आखिर उन आंकड़ों को क्यों भूला देना चाहते हैं जो जीएम तकनीक अपनाए जाने वाले देशों के संदर्भ में सामने आ रहे हैं। दुनिया भर के 200 देशों में से सिर्फ चार देश– अमेरिका, अर्जेन्टीना, उरुग्वे और पैराग्वे ही जीएम तकनीक का इस्तेमाल कर रहे हैं। अमेरिका में जितना जीएम फूड उत्पादित होता है उसका 50 फीसदी तो पशुचारे व बायोफ्यूल बनाने में खप जाता है। ऐसे में सवाल यह है कि अगर जीएम उत्पाद मानव स्वास्थ्य के लिए निरापद है तो अमेरिका अपनी जनता को क्यों नहीं खिलाता। सुअरो, गायों को खिलाने तथा बायोडीजल बनाने में क्यों इस्तेमाल करता है। दरअसल यह एक गंभीर षडयंत्र है। मोन्सांतो जैसी कम्पनी अपनी पूंजी के बल पर अमेरिका की राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों में बेहद महत्वपूर्ण स्थान रखती है, वही कम्पनी अपने खेती के पोषण के लिए भारत जैसे गंभीर देशों में जीएम बीजों के प्रचार–प्रसार के लिए अमेरिकी सरकार के प्रभाव का इस्तेमाल करती है। हमारे नीति नियामक इस बारे में तटस्थापूर्वक सोचते तक नहीं। यू.पी.ए. सरकार

के विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी मंत्री कपिल सिब्बल जब यह कह रहे होते है कि –''जी.एम.फसले क्यों नहीं? या भारत की इतनी बड़ी आबादी का पेट भरने के लिए जीएम फसलें जरूरी है'' तब वे शायद भूल जाते है कि भारत में विभिन्न प्रान्तों में जीएम फसलों के जो परीक्षण चल रहे हैं उन पर किसी तटस्थ वैज्ञानिक संस्था की निगरानी नहीं है, न ही किसी सरकारी ऐजेन्सी का वास्तविक नियंत्रण है। जिस देश का निजाम ही इतना सतही और गैर जिम्मेदार हो कि उसे सच न दिखाई दे तो आम लोगों का लामबन्द होना ही अन्तिम विकल्प बचता है। जीएम तकनीक क्या है? यह कैसे काम करती है? इसे समझना जरूरी इसलिए है कि चौतरफा लूट और भ्रष्टाचार के इस दौर में अनाज पर नियंत्रण करने के लिए पूंजीवादी देशों और इसके द्वारा खड़ी की गई कम्पनियों ने प्रकृति से छेड़छाड़ कर सम्पूर्ण विश्व की जैवविविधता को ही खतरे में डाल दिया है। पूरी दुनिया में के गरीबों को गिनीपिंग बनाने के अमेरीकी षडयन्त्र को आखिर हमारी सरकार क्यों नहीं समझ पा रही है, यह एक गम्भीर सवाल है। राकफेलर फाउन्डेशन, मोन्सांतो, ड्यूपोन्ड, कारगिल राइसटेक, केलजिन और सिंजेटा जैसे कम्पनियां अमरीकी सरकार पर दबाव बना कर तीसरी दुनिया के गरीब देशों के बाजार में जिनान्तरित फसलों के बीज खपा कर अपने हित जरूर साध रही है। लेकिन इन देशों की गरीब जनता और इनकी आने वाली पीढ़ियां अपने स्वास्थ्य से इसकी कीमत चुकाएगी। हालांकि जिनान्तरित फसलों के बाजार को बढ़ावा देने के प्रयासों के पीछे जो तंत्र सक्रिय है उसे समझना ज्यादा कठिन नहीं है। फिर भी सरकार में बैठे लोग कम्पनियों द्वारा प्रचारित रंगीन विज्ञापनों की भाषा बोल रहे हैं।

यह पुस्तक मूल रूप से सेन्टर फॉर सस्टेनेबल ऐग्रीकल्चर, हैदराबाद द्वारा अंग्रेजी में तैयार सामग्री पर आधारित है। पुस्तक प्रकाशन में आर्थिक सहयोग स्वीस एड इंडिया ने दिया है।

1. जेनेटिक इंजीनियरिंग (जीई) क्या है?

दुनिया के सभी जीवधारियों का शरीर कोशिकाओं से बना होता है। प्रत्येक कोशिका के भीतर एक नाभिक होता है। इसी में जीवधारी की आनुवांशिकी से जुड़ी सभी सामग्रियां छिपी रहती हैं। ये अनुवांशिक सामग्री एक खास तरह की क्रमबद्ध संरचना, क्रोमोसोम के रूप में समाहित रहती है। क्रोमोसोम के भीतर दो कुंडलियों के आकार वाली एक ज्यामितीय संरचना होती है, जिसे डीएनए (डी ऑक्सी राइबो न्यूक्लिक एसिड) कहा जाता है। डीएनए का संरचनात्मक आधार चार रासायनिक पदार्थों से तैयार होता है। ऐसा माना जाता है कि जीन भी इन्हीं संरचनात्मक आधार के डीएनए पर एक निश्चित क्रम (ग्वानाइन (जी), थायमाइन (टी), सायटोसिन (सी) और एडेनाइन (ए)) से बनते हैं। यही निश्चित क्रम किसी प्रोटीन के उत्पादन का कोड कहलाता है।

पौधा भी अपनी जिंदगी एक कोशिका से शुरू करता है। यही वह अंडाणु है, जो बीज से तैयार हुआ है। पहली कोशिका (जायगोट) अनगिनत कोशिकाओं में बंट जाती है, जिनसे मिलकर विभिन्न अंगों का निर्माण होता है। यही जीवधारी की विशेषता भी निर्धारित करते हैं। जैसे–जैसे पौधे का विकास होता है, कोशिकाएं खुद को एक–दूसरे से अलग करती जाती हैं। मिसाल के लिए पौधों में पत्तियों में मौजूद कोशिकाएं जड़ की कोशिकाओं से अलग होती हैं। यह फर्क कोशिकाओं के भीतर बनने वाले प्रोटीन की मात्रा और उसकी प्रकृति पर निर्भर करता है। दरअसल कोशिकाओं के भीतर पाई जाने वाली अधिकतर संरचनाओं का निर्माण प्रोटीन से ही होता है और कोशिकाओं के भीतर इस प्रक्रिया को एंजाइम प्रभावित करते हैं, जो खुद भी एक प्रोटीन ही है। हालांकि एक कोशिका में कई हजार प्रोटीन मौजूद होते हैं, उनकी मात्रा

अलग–अलग रहती है। इसके अलावा विकास प्रक्रिया के सभी चरणों में कई किस्म की कोशिकाओं में कुछ प्रोटीन एक जैसे होते हैं, तो कुछ प्रोटीन किसी खास समय पर किसी विशेष कोशिका में ही मौजूद रहते हैं। कुछ प्रोटीन पर्यावरण में होने वाले बदलाव के कारण बनते हैं, जैसे तापमान में कमी या वृद्धि। पेड़ के समूचे जीवन में यह प्रक्रिया मौजूद रह भी सकती है और नहीं भी। किस कोशिका में किस तरह का प्रोटीन कितनी मात्रा में मौजूद हो, इस पर नियंत्रण का सबसे आसान तरीका है जीन के कामकाज को नियंत्रित करना।

किसी जीवधारी के जीनोम से किसी जीन (जीन्स) को अलग करने और उसे किसी अन्य जीवधारी के जीनोम में प्रवेश कराने का विज्ञान और उसकी तकनीक जेनेटिक इंजीनियरिंग (जीई) कहलाती है। जीनोम का प्रवेश बगैर किसी क्रम के किया जाता है और इस तरह से पैदा हुए पौधे और बीजों को जेनेटिकली इजीनियर्ड प्लांट्स या बीज (जीई प्लांट्स या सीड्स) कहा जाता है। प्रकृति में इस तरह से जीन का प्रवेश आमतौर पर नहीं होता है। कुदरती प्रक्रिया के तहत जीन्स और उनके गुण पीढ़ी दर पीढ़ी एक–दूसरे को मिलते चले जाते हैं। जीन्स का आदान–प्रदान प्रजनन के लिए उपयुक्त निकट संबंधी जीवों के बीच ही होता है। आनुवांशिक इंजीनियरिंग की इस आधुनिक तकनीक की मदद से एक जीवधारी के शरीर में से जीन्स के किसी विशिष्ट समूह को अलग कर किसी अन्य समूह को उसकी जगह प्रवेश कराना संभव है और इसके लिए प्रजनन के लिए प्राकृतिक प्रक्रिया की भी जरूरत नहीं है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग सामान्यतः किसी एक जीन का विषय नहीं, बल्कि इच्छित जीन को किसी जरूरी अतिरिक्त डीएनए के अंश के साथ जीवधारी में प्रवेश कराने और उसके जेनेटिक क्रम को नियंत्रित करने का मामला है। ये उत्प्रेरक, मार्कर्स, टर्मिनेटर्स आदि कुछ भी हो सकते हैं, जिन्हें इच्छित जीन के साथ मिलाने को जीन का निर्माण कहा जाता है। इस तरह से जेनेटिक इंजीनियरिंग को किसी जीवधारी के जीन्स में बदलाव कर प्रोटीन के पैटर्न में जोड़–तोड़ करने की तकनीक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में मौजूदा जीन्स

को बदलकर उनकी जगह नए जीन्स स्थापित किए जाते हैं, ताकि वे समय के साथ अलग–अलग मात्रा और संख्या में तैयार हो सकें। चूंकि सभी जीवधारियों का जेनेटिक कोड एक समान होता है, इसलिए किसी मक्खी में से ल्यूसफेरॉन नामक कोड का जीन्स लेकर, जो चमकने वाला होता है, तंबाकू के किसी पौधे में प्रत्यारोपित किया जा सकता है। जीन्स के ट्रांसफर की इस प्रक्रिया में इच्छित जीन्स को किसी खास पौधे, जीव–जंतु या बैक्टीरिया के क्रोमोसोम्स में से निकाल लिया जाता है और फिर उसी जीन्स को एक कोशिका में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। इसके बाद आनुवांशिक रूप से परिवर्तित इस कोशिका को ट्रांसजेनिक या जेनेटिकली मॉडिफाइड ऑर्गेनिज्म (जीएमओ) में तब्दील करने के लिए पुनर्जीवित किया जाता है। यही परिवर्तित ऑर्गेनिज्म नई जीन को आगे बढ़ाते हुए एक नई वंश व्यवस्था की स्थापना करता है।

जीनोम क्या है?

जीवधारी की आनुवांशिक सामग्री का संपूर्ण सेट (जीवधारी में शामिल डीएनए) या उस जीवधारी में समाहित सभी आनुवांशिक सामग्री, जो कि डीएनए/आरएनए के रूप में हो, जीनोम कहलाता है। इसमें जीन्स और नॉन कोडिंग सीक्वेंस भी शामिल होते हैं।

तो फिर जीन क्या है? इस सवाल का कोई स्पष्ट जवाब नहीं है। माना जाता है कि डीएनए संरचना में जेनेटिक सूचनाओं का एक कोड है, जिसे वर्णमाला के अक्षरों की तरह क्रमबद्ध कर या प्रोटीन के उत्पादन के लिए जेनेटिक कोड में इस्तेमाल किया जाता है। इस प्रकार जीन को डीएनए श्रृंखला के आधार पर एक निश्चित क्रम के रूप में माना जा सकता है, जो कि किसी विशेष प्रोटीन के निर्माण के लिए जरूरी है। 1960 में इस कोड को तोड़ा गया था और माना जाता है कि उसके बाद ही जीन्स को कोड के रूप में पहचाना गया। एक जीन के कई भाग होते हैं, जिन्हें विभिन्न तरीकों से एक साथ मिलाकर अलग–अलग प्रोटीन तैयार किए जाते हैं।

प्रोटीन क्या है?

ये रासायनिक पदार्थ होते हैं, जो कोशिका या जीवधारी के बनने और उसके कामकाज में या तो मध्यस्थ का काम करते हैं, या फिर किसी निश्चित संरचना को आकार देने या जीवन प्रक्रिया में एक उत्प्रेरक की तरह काम करते हैं। असल में प्रोटीन विभिन्न अमीनो एसिड की श्रृंखला है। प्रत्येक प्रोटीन में अमीनो एसिड का क्रम और उसकी श्रृंखला अलग–अलग होती है। प्रत्येक अमीनो एसिड के क्रम को क्रोमोसोम के एक खास कोड से चिह्नित किया जाता है। यह कोड डीएनए से तैयार होता है। हर कोशिका में जीन्स के दो पूर्ण सेट होते हैं, जो कि किसी पौधे के अंगों की कोशिकाओं में बनने वाले प्रोटीन के कोड होते हैं। पौधे को इनकी ताउम्र जरूरत होती है। हालांकि कोशिकाएं केवल उन्हीं जीन्स का उपयोग करती हैं, जिनके प्रोटीन की संबंधित कोशिका को जरूरत होती है। ऐसे में बाकी जीन्स उस विशेष कोशिका के लिए निष्क्रिय रहते हैं, लेकिन ये पौधे के किसी अन्य हिस्से के लिए सक्रिय हो सकते हैं।

जीन्स सक्रिय हों या निष्क्रिय, यह कोशिका में डीनए और अन्य अणुओं के बीच के जटिल संबंधों पर निर्भर करता है। विशिष्ट रूप में कहें तो एक आदर्श जीन्स को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है। पहला हिस्सा उस कोशिका या पर्यावरण से संबंध बनाने वाले डीएनए के रूप में होता है, जिसे प्रमोटर भी कहा जाता है। दूसरा भाग प्रोटीन में मौजूद अमीनो एसिड के क्रम की कोडिंग होती है, जिसे कोडिंग क्रम कहा जाता है। जब जीन सक्रिय होता है, तब प्रमोटर अन्य अणुओं के साथ इस तरह से प्रतिक्रिया करता है, जिससे कोडिंग क्रम को किसी विशेष प्रोटीन के संश्लेषण का निर्देश मिलता रहे। जीन एक्सप्रेशन के बायोकेमिकल उत्पाद के रूप में भी प्रोटीन तैयार होता है। पौधे के समूचे जीवनक्रम में विभिन्न प्रोटीन का उत्पादन बंद और चालू होता रहता है। एक जीवधारी में जीन एक्सप्रेशन (प्रोटीन के उत्पादन) की यह एक आवश्यक क्रिया है। यह क्रिया कोशिका के विकास (प्रारंभिक बायोकेमिकल प्रक्रिया) के मूलभूत स्तर पर होती है। इसके अलावा पर्यावरणीय बदलाव के दौरान भी ये प्रतिक्रियास्वरूप अपने भीतर क्रांतिकारी

तब्दीली करते हैं। यह बात जानना दिलचस्प है कि किसी पौधे या जीवधारी की श्रेणीबद्धता का निर्धारण करने में जीन्स की संख्या नहीं, बल्कि जीनोम में इनकोडेड प्रोटीन की संख्या जिम्मेदार होती है। उदाहरण के लिए बैक्टीरिया का जीनोम करीब 1000 प्रोटीन को इनकोड करता है, जबकि स्तनपायी में पाया जाने वाली जीनोम दसियों हजारों जीनोम की इनकोडिंग करता है। इससे और उंचे दर्जे के जीवधारियों में क्रोमोसोम में मौजूद कुछ जीन्स ऐसे प्रोटीन को इनकोड करते हैं, जिनका एकमात्र काम अन्य प्रोटीन्स के उत्पादन को नियंत्रित करना है। यहां यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि इस क्रिया में प्रोटीन के कोड से ज्यादा अहमियत जीन्स की है। इस प्रकार जेनेटिक इंजीनियरिंग एक कट–पेस्ट का काम है, जिसमें कुछ जीन्स को किसी अन्य जीवधारी से काटकर किसी अन्य जीवधारी के अंदर प्रवेश करा दिया जाता है।

बायोटेक्नोलॉजी क्या है?

बायोटेक्नोलॉजी जीवंत स्वरूप पर आधारित तकनीक है, जिसमें सभी जैविक विज्ञान आते हैं। निचले स्तर की बायोटेक्नोलॉजी में वर्मी कंपोस्ट और कई अन्य प्रकार के जैविक खाद/कीटनाशक आदि आते हैं, जिनका उपयोग किसानों द्वारा किया जाता है। लेकिन माना जाता है कि आमतौर पर बायोटेक्नोलॉजी का उपयोग आण्विक स्तर पर किया जाता है। उदाहरण के लिए यह जैविक पदार्थ को दैदीप्यमान करने का मामला हो सकता है, जिसमें म्यूटेशन का सहारा लिया जाए। यही आनुवांशिक परिवर्तन (जीएम) तकनीक है।

इसके अलावा मार्कर असिस्टेड सिलेक्शन जैसी कुछ अन्य तकनीक भी हैं, जिन्हें परंपरागत प्रजनन में इस्तेमाल किया जाता है। इसमें प्रजनन में सटीकता के लिए जेनेटिक मार्कर्स (विशिष्ट डीएनए के उपखंड) को किसी खास गुण से जोड़ा जाता है। असल में जेनेटिक इंजीनियरिंग बायोटेक्नोलॉजी जैसे विशाल क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली एक तकनीक मात्र है। यह जेनेटिक मॉडिफिकेशन का एक हिस्सा भी है। इस पुस्तक में हम कृषि में ट्रांसजेनिक तकनीक के उपयोग के बारे में ही बात करेंगे।

• • •

2. जीई के पीछे का विज्ञान? क्या यह भरोसेमंद है?

जेनेटिक इंजीनियरिंग कुछ न्यूनीकरण और साधारण किस्म की धारणाओं पर आधारित है। इसमें यह माना जाता है कि जीवधारी का चरित्र कुछ खास जीन्स से जुड़ा होता है और इन जीन्स को किसी जीवधारी में से निकालकर किसी अन्य जीवधारी में प्रवेश कराया जा सकता है। इस प्रक्रिया में नए जीवधारी में भी पुराने जीवधारी के समान गुण आ जाते हैं । इसके लिए डीएनए के कुछ उप खंडों को उससे जोड़ा जाता है। हालांकि अब यह सभी जानते हैं कि वैज्ञानिक रूप से जीन्स और जीन्स एक्सप्रेशन उतना सहज नहीं है, जैसा कि जेनेटिक इंजीनियरिंग में माना जाता है।

जटिल नियंत्रक नेटवर्कों द्वारा जीन एक्सप्रेशन को कुछ इस तरह से नियंत्रित किया जाता है कि जिसे समझना काफी कठिन है। जेनेटिक इंजीनियरिंग में इन जटिल नियंत्रक नेटवर्क को शामिल नहीं किया गया है। यही कारण है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग के विज्ञान में कई सवाल अब भी अनसुलझे हैं। न तो डीएनए का मूलभूत ढांचा और न ही जेनेटिक कोड मानव जीनोम में मौजूद थोड़े से जीन्स द्वारा इतने विभिन्न प्रकार के प्रोटीन के उत्पादन की व्याख्या कर सकता है। जेनेटिक इंजीनियरिंग यह मानता है कि एक सिस्टम के भीतर ही जीन्स एक अलग इकाई है। यह सही नहीं है। जीनोम के भीतर जीन की स्थिति कड़े नियंत्रक उपायों के कारण महत्वपूर्ण है। जीनोम के भीतर जीन का स्वेच्छा से प्रवेश इस नियंत्रक उपायों के बाहर की बात है। मतलब यह है कि यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसे नियंत्रित करना अब तक संभव नहीं हो सका है।

ट्रांसजेनिक जीन के निर्माण में आमतौर पर प्रमोटर्स का उपयोग होता है, जो डीएनए की प्रतिलिपि तैयार करने का काम शुरू करता

है। ये प्रमोटर्स कोशिका के नियंत्रक तंत्र का हिस्सा नहीं होते हैं। ज्यादातर मामलों में कॉलीफ्लॉवर मोसेक वायरस (सीएएमवी 355) प्रमोटर्स का उपयोग किया जाता है। यही जीवधारी की हर कोशिका में प्रवेश कराए गए जीन को सक्रिय रखता है और यही जेनेटिक इंजीनियरिंग में मानव स्वास्थ्य को सर्वाधिक नुकसान भी पहुंचाता है।

प्रक्रिया काफी विध्वसंकारी है। आनुवांशिक रूप से परिवर्तित कई जीवधारियों में प्रवेश कराए गए जीन का भाग्य लंबी कष्टदायक विश्लेषण प्रक्रिया के बाद ही पता चलता है। उदाहरण के लिए होस्ट जीनोम के भीतर जीन्स की कई कॉपी बन जाना। या फिर जीन्स के विकास क्रम में उनके कुछ हिस्से गुम हो सकते हैं, जो कि कांट–छांट कर, उलटफेर कर या छोटे–छोटे हिस्सों में तोड़कर या नष्ट किए जा सकते हैं। इसके अलावा प्रवेश कराए गए जीन्स को जीवधारी के सामान्य डीएनए मैनेजमेंट प्रणाली के जरिए क्रमिक रूप से खामोश किया जा सकता है। प्रवेश कराए गए जीन्स को लेकर एक और चिंता की बात यह भी है कि यह जीवधारी के जीनोम की एकजुटता को छिन्न–भिन्न कर सकता है या फिर यह उसके जीन्स के सामान्य व्यवहार में हस्तक्षेप भी कर सकता है। यह भी हो सकता है कि प्रवेश की जगह पर भारी बदलाव हो जाए या फिर उसकी नस्ल ही बदल जाए। कभी–कभी कुछ अज्ञात क्रियाओं के प्रोटीन के लिए कोड के तौर पर ट्रांसजेन्स प्राप्त किए जाते हैं। ये ऐसे प्रोटीन होते हैं जिनके उत्पन्न होने की न तो उम्मीद की जाती है और न ही इनका परीक्षण हुआ होता है।

इस प्रकार जीन के प्रवेश कराने की क्रिया जीवधारी के डीएनए के एक या कई प्राकृतिक जीन्स को नष्ट कर सकती है, उसे छिन्न–भिन्न कर सकती है या उसके कामकाज को ठप करने या फिर उसे हमेशा के लिए चालू करने जैसा काम भी कर सकती है। यह प्रक्रिया सैकड़ों जीन्स के व्यवहार को भी बदल सकती है। जब ऐसे पौधे को टिश्यू कल्चर की मदद से जीएम प्लांट के रूप में उगाया जाता है तो इससे डीएनए के भीतर जीन्स की नस्ल में हजारों की संख्या में अतिरिक्त परिवर्तन हो सकते हैं।

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, अब तक वैज्ञानिक जीवधारी के भीतर ट्रांसजेन के लोकेशन को नियंत्रित नहीं कर सके हैं। इन सभी कारणों से जेनेटिक इंजीनियरिंग एक बड़ा ही अनिश्चित, अविश्वसनीय और असंभाव्य तकनीक बन चुका है। इस तकनीक के बारे में सिर्फ एक ही बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि यह अनिश्चित है।

यह अनिश्चितता खाद्य पदार्थों की पोषकता और सुरक्षा पैमाने में बदलाव कर देता है, क्योंकि यह पौधे की प्रजनन क्षमता को उसके चरम तक बढ़ा देता है। इससे देश की खाद्य सुरक्षा अस्त–व्यस्त हो सकती है, खासतौर पर तब जब कोई देश जीएम फूड्स को अपनी खाद्य सुरक्षा का आधार बनाता है।

इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि पौधे की रासायनिक खाद के प्रति प्रतिरोधकता कैसी हो, या इसमें सूखे का सामना करने की कितनी शक्ति हो, अथवा किसी और बात के लिए पौधे के गुण का निर्धारण सिर्फ जेनेटिक इंजीनियरिंग से ही नहीं होता। पौधे में ये गुण काफी हद तक पर्यावरण की आंतरिक और बाहरी परिस्थितियों पर भी निर्भर करते हैं। पौधे में सिर्फ जीन्स की मौजूदगी से ही इसका व्यवहार नहीं बदल जाता है। इस तकनीक के बारे में बात करते हुए इस कमजोरी को प्रायः नजरअंदाज कर दिया जाता है और इसे दुनिया की समस्त कृषि समस्या के चमत्कारिक समाधान के रूप में पेश किया जाता है, जो कि आनुवांशिक निर्धारण का एक संकुचित दृष्टिकोण है। अगर कुछ क्षणों के लिए हम यह मान भी लें कि जेनेटिक इंजीनियरिंग एक विनाशकारी तकनीक नहीं है, तो भी यह सफलता की निश्चित गारंटी नहीं है। यह इसलिए भी कि इसके पीछे जेनेटिक इंजीनियरिंग का हाथ है, जो स्वयं अविश्वसनीय है। इसके लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त पर्यावरणीय परिस्थितियों की जरूरत होती है। हालांकि आदर्श पर्यावरणीय परिस्थितियों में बिना जेनेटिक इंजीनियरिंग के भी मौजूदा समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझाया जा सकता है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग कैसे की जाती है?

जेनेटिक इंजीनियरिंग के लिए आमतौर पर एक–दो विधियां अपनाई जाती हैं, जिन्हें रिकॉम्बीनेंट–डीएनए (आर–डीएनए) तकनीक कहा जाता है। इसके तहत पहले तो इच्छित डीएनए को भौतिकीय या रासायनिक

साधनों (ब्लॉटिंग, वॉशिंग, ट्रांसफर और अन्य रासायनिक विधियों का संकलन निष्क्रिय डीएनए को अलग करने के लिए) की मदद से बाहर निकाला जाता है। इसके बाद इच्छित जीन्स को जीवधारी में प्रवेश कराया जाता है। इसके लिए आमतौर पर माइक्रोआर्गेनिज्म (एग्रोबैक्टीरियम स्पीसीज) को वाहक या वेक्टर बनाकर उपयोग में लाया जाता है, ताकि वह इच्छित जीन को जीवधारी के भीतर तक ले जा सके। इसके लिए प्रक्षेपण एक अन्य तरीका है। इसमें एक जीन गन होता है, जो उस डीएनए को निशाना बनाता है, जिसमें जीन भी शामिल होता है। यह जीन, माइक्रोस्कोपिक गोल्ड या टंगस्टन के कणों से कोटेड होता है। इसे पौधे की कोशिकाओं में ब्लास्टिंग की मदद से सीधे प्रवेश करा दिया जाता है। कोशिका के नाभिक के भतीर बाहरी डीएनए को समायोजित करने के लिए एक प्राकृतिक प्रक्रिया की उम्मीद की जाती है, ताकि पौधे के गुणसूत्र इसे अपने ही डीएनए के रूप में स्वीकार कर लें। आमतौर पर इस प्रक्रिया में जीन कंस्ट्रक्ट का भी उपयोग होता है, जिसमें इच्छित जीन्स और डीएनए के कुछ अतिरिक्त टुकड़े भी शामिल होते हैं, जो जीन को प्रवेश कराने, उसकी पहचान और प्रक्रिया को नियंत्रित/नियमित करने में मदद करते हैं। इच्छित जीन्स के व्यवहार को अपेक्षा के अनुरूप करने के लिए नियंत्रक परिस्थितियों की जरूरत होती है, ताकि जीन्स से जुड़े प्रोटीन के निर्माण को प्रेरित किया जा सके। यह जरूरी है क्योंकि इच्छित जीन्स की सेटिंग अलग होती है। इस प्रक्रिया में एक उत्प्रेरक (प्रमोटर), एक टर्मिनेटर और एक मार्कर जीन (ज्यादातर पौधों के लिए) की भी जरूरत होती है। चूंकि जीन का प्रवेश एक स्वैच्छिक क्रिया है, इसलिए प्रवेश कराए गए जीन्स के साथ कोशिकाओं की आसान पहचान के लिए आमतौर पर मार्कर्स को निर्माण में शामिल किया जाता है। सामान्यतः उपयोग किए हुए मार्कर एक एंटीबायोटिक रेजिस्टेंट जीन होते हैं। कोशिका को ऐंटीबायोटिक से उपचारित घोल के साथ कल्चर करने के बाद एंटीबायोटिक रेजिस्टेंस वाली जीवित कोशिकाओं को चुन लिया जाता है। माना जाता है कि इनमें समूचे जीन कंस्ट्रक्ट का ट्रांसफर हो चुका होता है। यहां यह याद रखना जरूरी है कि इस बात के आसार भी हो सकते हैं कि एंटीबायोटिक जीन्स भागकर किसी अन्य जीवित जीवधारी से जाकर जुड़ जाएं, खासतौर पर माइक्रोआर्गेनिज्म से।

• • •

3. कृषि क्षेत्र में अन्य प्रजनन तकनीकों और जीई में फर्क?

कृषि वैज्ञानिकों द्वारा अपनाई जाने वाली अन्य किसी भी प्रजनन तकनीक में आमतौर पर उपजाति की बाधाओं को पार नहीं किया जाता है। उदाहरण के लिए जेनेटिक इंजीनियरिंग के मामले में किसी बिच्छू का जीन ज्वार के पौधे में प्रवेश कराया जा सकता है। यहां तक कि मानव जीन को भी चावल के पौधे में प्रवेश कराया जा चुका है। यह अप्राकृतिक है और उपजाति की इन बाधाओं को पार करने का काम अन्य प्राणियों सहित वनस्पति जगत में भी धड़ल्ले से हो रहा है। यह बात सभी मानते हैं कि जीवधारियों में प्राकृतिक रूप से आनुवांशिक भिन्नता पाई जाती है, जो कि बाहरी पर्यावरण के संपर्क में आने पर प्रतिक्रियास्वरूप होती है। यही आनुवांशिक भिन्नता किसी जीवधारी में उसके अनोखेपन को बढ़ाती है। यह अनोखापन लंबे समय तक बना रह सकता है और साथ ही पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रह सकता है। विकासक्रम के मायनों में यह प्रक्रिया प्राकृतिक चुनाव कहलाती है। चुनाव की यह प्राकृतिक प्रक्रिया हमें अपरिवर्तनीय इकोलॉजिकल बदलाव का पाठ पढ़ाती है।

कुछ लोग इसे जीन्स के इनकोडिंग गुणों से जोड़कर देखते हैं ऐसा ही प्रचार भी करते हैं। वे कहते हैं कि जीवधारी के जीवन को निर्धारित करने वाले सभी कारक बाहरी हैं और ये निरंतर बदल रहे हैं। इस मामले में ऐसा लगता है कि एक इकोलॉजिकल परिप्रेक्ष्य में किसी जीवधारी का आनुवांशिक लाभ किसी अन्य जीवधारी के लिए नुकसानदेह भी हो सकती है। किसी जीवधारी में होने वाला मूल आनुवांशिक परिवर्तन प्राकृतिक चुनाव की घटना का एक छोटा सा हिस्सा भर है। उस मूल परिवर्तन का इकोलॉजिकल परिप्रेक्ष्य में प्रभाव अन्य जीवधारियों के जीन्स में भी पड़ता है। इस परिस्थिति में वे कैसे बर्ताव करते हैं, यह ज्यादा

महत्वपूर्ण है। प्रकृति में लंबे समय तक होने वाले आनुवांशिक परिवर्तन प्रमुख रूप से तीन प्रक्रियाओं का नतीजा होते हैंः

1. नस्ल परिवर्तन और रिकॉम्बीनेशन।
2. हारिजॉन्टल (इंटर स्पीशीज) जीन ट्रांसफर और
3. पर्यावरणीय और इकोलॉजिकल दबाव के कारण होने वाला प्राकृतिक चुनाव।

पिछले करीब एक सहस्राब्दी से मानव प्रजनन के चुनिंदा विकल्पों का उपयोग करता आ रहा है, जो कि पहले चरण की प्रक्रिया में हेरफेर के जरिए होता है। जेनेटिक इंजीनियरिंग दूसरे चरण की प्रक्रिया में हेरफेर कर किया गया विस्तार है। किसान भी इस प्राकृतिक चुनाव की प्रक्रिया को समझते हैं और वे खेती के काम में इसका उपयोग भी करते हैं। मौजूदा विभिन्नता के बीच पौधों को उनकी विशिष्ट जरूरतों व परिस्थितियों के आधार पर चुना जाता है। मिसाल के लिए, भारत में धान की कृषि योग्य 50 हजार से ज्यादा प्रजातियां मौजूद हैं, जो सूखाग्रस्त, पहाड़ी इलाकों, जल भराव वाले क्षेत्र और खारे पानी वाले इलाकों आदि में उगाए जा सकते हैं। धान का स्वाद, रंग और आकार भी अलग–अलग प्रकार के भोजन पकाने के हिसाब से अलग–अलग होता है। आधुनिक खेती (जिसे आजकल परंपरागत खेती भी कहते हैं) ने सांख्यिकीय डिजाइन के माध्यम से चुनाव की प्रक्रिया को और व्यवस्थित कर दिया है। जिस दिन से कुदरती प्रजातियों का चुनाव शुरू किया गया है, उसी दिन से विज्ञान ने भी प्रजातियों को तैयार करने और उनके चुनाव का काम प्रारंभ कर दिया था। ये नई प्रजातियां जंगली प्रजातियों और पौधों का चुनाव कर उनमें से तैयार की गई हैं। कई प्रजातियों में नस्लीय बदलाव के लिए उन्हें चमकदार बनाने की तकनीक का भी उपयोग किया गया और इनसे नई प्रजातियों का विकास किया गया। उदाहरण के लिए गेहूं की 'शरबती सोनारा' किस्म।

परंपरागत प्रजनन और जेनेटिक इंजीनियरिंग

पुनःप्रजनन की परंपरागत तकनीक में किसी एक ही प्रजाति को उससे

जुड़ी किसी अन्य प्रजाति से मेल करवाकर प्रजनन करवाया जा सकता है। इससे पैदा हुई नई प्रजाति में दोनों ही प्रजातियों के जीन्स होते हैं, लेकिन ये अपने मूल जीन की कोडिंग से अलग प्रकार के और अलग क्रियाकलापों वाले होते हैं। लेकिन आनुवांशिक रूप से परिवर्तित जीवधारी की रचना प्रजनन की परंपरागत तकनीकों से अलग होती है, इसलिए उनमें बिल्कुल नए जीन्स और कार्य संपादन के नए गुण होते हैं। ये जीन्स जीवधारी के अंदर पहले से मौजूद जीन्स के साथ बिल्कुल अनपेक्षित तरीके से बर्ताव करते हैं। जीवधारी में जीन्स को प्रवेश कराने के बाद कोशिका में एक ट्रांसजेनिक लाइन पैदा होती है, जिससे एक समूची नई लाइन का उत्पादन होता है। जेनेटिक इंजीनियरिंग के कुछ उदाहरणों से इसकी अप्राकृतिक क्रियाओं को समझा जा सकता है कि कैसे ये परंपरागत प्रजनन तकनीकों से अलग हैं।

परंपरागत प्रजनन और जेनेटिक इंजीनियरिंग

बेसिस ट्रांसफर

चावल में सुअर का जीन्स : जापान में चावल की किस्म में सुअर के तीन प्रकार के जीन्स मिलाए गए। इससे चावल की नई किस्म पौधों को नष्ट करने वाले खरपतवार नाशकों से मुकाबला करने में सक्षम है।

चावल में मानव जीन्स : जापानी वैज्ञानिकों ने मानव गुर्दे से जीन्स निकालकर उसे चावल में प्रत्यारोपित किया है, ताकि वे रासायनिक कीटनाशकों और औद्योगिक रसायनों को हजम कर सकें। ये जीन्स एक तरह का एंजाइम बनाते हैं, जिनका कोड नेम सीपीवाय 2बी6 है, जो शरीर में घातक रसायनों को तोड़ देते हैं। एक अमेरिकी कंपनी एप्लाइड फाइटोलॉजिक्स धान की ऐसी किस्म का विकास कर रही है, जिसे मानव के दो जीन्स लैक्टोफेरिन और लाइसोजाइम से मिलाकर बनाया जा रहा है। ये जीन्स पौधे की फंगस और जंतु कीटनाशकों से रक्षा करेंगे। कैलिफोर्निया स्थित वैंट्रिया बायोसाइंस मानव जीन्स वाली चावल की एक ऐसा किस्म विकसित कर रही है, जो लैक्टोफेरिन और लाइसोजाइम प्रोटीन का निर्माण करेगी। चावल की यह नई किस्म इंसान को डायरिया जैसी बीमारी से बचाएगी। वॉशिंगटन स्टेट यूनिवर्सिटी जौ की एक नई

किस्म का परीक्षण कर रही है, जिसे लैक्टोफेरिन, लाइसोजाइम एंटीट्रिपसिन और एंटीथ्रॉम्बिन के लिए उपचारित किया गया है। फ्रांस की मेरीस्टिम थेराप्यूटिक्स भी बाजरे के मानव से लिए गए लैक्टोफेरिन जीन युक्त बाजरे की एक किस्म का मैदानी परीक्षण कर रही है।

- रैबीस वायरस से जीन लेकर उसे टमाटर में प्रवेश करवाकर मुंह से खाने योग्य एक वैक्सीन तैयार किया गया है।
- इंसुलिन और वैक्सीन का उत्पादन करने वाले मानव जीन को मक्का, टमाटर और चावल में प्रत्यारोपित किया गया है।

सिर्फ जीई को लेकर ही चिंता क्यों, अन्य प्रजनन तकनीकों को लेकर क्यों नहीं?

कोई भी आनुवांशिक परिवर्तन कई स्तरों पर असर डालता है। सबसे पहले तो यह कोशिका के अंदर अणुओं की गतिविधियों को प्रभावित करता है। यह बात सेल्युलर मेटाबोलिज्म में परिवर्तन या भ्रूण के विकास में बदलाव से नजर आता है। ये बदलाव एक ऐसे जीवधारी की रचना कर सकते हैं, जिसके गुण एकदम अलग हों। ये पर्यावरण के प्रति अलग तरीके से प्रतिक्रिया दे सकते हैं। ये अपनी जाति के अन्य जीवधारियों व सदस्यों से एकदम अलग तरीके से बर्ताव कर सकते हैं। विकास का यह क्रम केवल एक छोटे से आनुवांशिक बदलाव से ही हो सकता है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग करते समय हम जीवधारी के मूल स्तर में हेरफेर करते हैं– जो कि उनके निर्माण और रखरखाव की सूचना में होता है। ये सूचनाएं आमतौर पर डीएनए श्रृंखला के रूप में होती है और ये प्रत्येक पीढ़ी के साथ नई कोशिकाओं के तौर पर परिवर्तित होती जाती हैं। आनुवांशिक परिवर्तन से होने वाले कुछ बदलाव तो सीधे तौर पर देखे जा सकते हैं, लेकिन इनके अंतिम प्रभाव के बारे में अनुमान लगाना मुश्किल है, क्योंकि बायोलॉजिकल नेटवर्क बेहद जटिल होता है। दूसरी ओर जेनेटिक इंजीनियरिंग में तेजी से होने वाले आण्विक बदलाव इको सिस्टम को उसके अनुसार बदलने या समायोजित करने का मौका ही नहीं देते।

जेनेटिक इंजीनियरिंग में इस्तेमाल किए जाने वाले कुछ लोकप्रिय जीन्स की खतरनाक प्रकृति के बारे में सुबूत बढ़ते ही जा रहे हैं। इनमें वे बीटी जीन्स भी शामिल हैं, जिन्हें बैसिलस थुरेंजिनिसिस नामक बैक्टीरिया से प्राप्त किया गया है। इसमें कीटों से प्रतिरोध के अपेक्षित गुण मौजूद हैं। इसकी जेनेटिक इंजीनियरिंग के दौरान सीएएमवी355 (कॉलीफ्लॉवर मोसेक वायरस) को प्रमोटर के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, जबकि एनएपीटी 2 और एएडी नामक एंटीबायोटिक रेजिस्टेंट मार्कर जीन्स को केनामायसिन और नियोमायसिन को सिलेक्शन एजेंट व एग्रोबैक्टीरियम टमफेसियन्स को वेक्टर के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इनकी खतरनाक प्रकृति के सुबूत इनकी एलर्जी की प्रवृत्ति इम्यूनोजेनिसिटी और टॉक्सीसिटी आदि में मिलते हैं। ये व्यक्तिगत कणों के प्रति भी नुकसानदेह हैं। ऐसे में इन जीन्स को जैसे ही किसी अन्य जीवधारी में प्रवेश कराया जाता है, ये उसे नुकसान पहुंचाते हैं। ये जेनेटिक इंजीनियर्ड जीवधारी समय के साथ जब पर्यावरण के संपर्क में आते हैं तो उसे भी नुकसान पहुंचा सकते हैं। हमने जीवन की उत्पत्ति को बड़ी तेजी से और अनियंत्रित तरीके से कुछ इस तरह से बदला है कि अब उसमें सुधार भी संभव नहीं है। ऐसे में जीई के उपयोग में ज्यादा से ज्यादा सावधानी बरतना ही सबसे अच्छा है।

• • •

4. जीई तकनीक और रसायनों का उपयोग

कई जीई फसलों को सिर्फ इस आधार पर खरीदा जाता है कि खेती के लिए रासायनिक खाद की कम जरूरत होगी। इसलिए ये पर्यावरण के लिए भी अनुकूल हैं। लेकिन इसका गहन विश्लेषण करने पर जीई जो तस्वीर सामने आती है वह बिल्कुल उलट है।

जीई और खरपतवारनाशक

इस समय दुनिया भर में बोई जाने वाली ज्यादातर जीई फसलों (अस्सी फीसदी से अधिक) को कुछ इस तरह से इंजीनियर किया गया है कि वे ग्लाइफॉस्टेट या ग्लूफॉसिनेट जैसी कुछ खरपतवार नाशक का सामना कर सकती हैं। उनके इस गुण को हर्बिसाइड टॉलरेंस कहा जाता है, जो उन देशों में बेहद लोकप्रिय है, जहां लोगों के पास कृषि भूमि अधिक है और कृषकों की संख्या कम है। अमेरिका और अन्य देशों के नतीजे बताते हैं कि खरपतवार प्रतिरोधी जीएम फसलों, जैसे राउंडअप रेडी सोया या राउंडअप रेडी कॉर्न (राउंडअप मोन्सांतो हर्बिसाइड का ब्रांड नेम है और दुनिया में सर्वाधिक बिकने वाला हर्बिसाइड है) जैसी फसलों के लिए कीटनाशकों के उपयोग में वृद्धि हुई है। यह तथ्य तर्कसंगत भी है, क्योंकि हर्बिसाइड प्रतिरोधी फसलों की इंजीनियरिंग ही इस तरीके से की गई है, ताकि वे ज्यादा रसायनों के उपयोग को भी बर्दाश्त कर सकें। अब तो ऐसी भी जीई फसलें तैयार हो गई हैं, जो एक नहीं बल्कि दो खरपतवार नाशकों को सहन कर सकती हैं। यह बात भी गौर करने लायक है कि इस मामले में मोन्सांतो का बाजार में दबदबा है। दुनियाभर में उगाई जाने वाली करीब 99 फीसदी खरपतवार प्रतिरोधी फसलें मोन्सांतो के इसी खास गुण से लैस हैं।

जीई और कीटनाशक

जिस एक अन्य गुण के कारण दुनिया में जेनेटिक इंजीनियरिंग का प्रचार किया जा रहा है, वह इसके कीटों को सहन करने की क्षमता है। ऐसे गुण वाली फसलें कुछ चुनिंदा कीटनाशकों के मुकाबले स्वयं के कीटनाशकों का निर्माण करती हैं। फसलों द्वारा उत्पादित विषैले तत्व कीटों को खत्म कर देते हैं। दुनियाभर में कीटों को नष्ट करने वाली सबसे आम फसल बीटी कॉटन और बीटी कॉर्न है, जो बैसिलस थुरेंजिनिसिस नामक बैक्टीरिया (इसी का संक्षिप्त नाम बीटी है, जो जीई फसलों में सामने आता है । भारत में बीटी कॉटन की सभी संकर प्रजातियों में इसे क्राय 1एसी के नाम से जाना जाता है) से प्राप्त किया गया है। बीटी कॉटन का पौधा अपने अंदर प्रवेश कराए गए बीटी जीन के कारण अपना स्वयं का टॉक्सिन बनाता है, जो अमेरिकी बुलवर्म और धब्बेदार बुलवर्म को नष्ट कर देता है। बीटी कॉटन का प्रचार करने वालों का कहना है कि यह गुलाबी रंग के बुलवर्म पर भी प्रभावी है। ये तीनों कीट मिलकर बुलवर्म कॉम्प्लेक्स बनाते हैं।

सबसे दिलचस्प बात यह है कि बायोटेक इंडस्ट्री भी इस बात से सहमत है कि कीटों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता के साथ विकसित किए गए जीएम फसलों के लिए कीटनाशक भी प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर सकते हैं। यह बात बीटी कॉटन और बीटी कॉर्न के मामले में एकदम सही है। आजकल कॉटन की एक नई जेनेटिकली मॉडिफाइड प्रजाति पेश की गई है, जिसमें दो जीन (स्टैक्ड मॉडिफाइड) हैं, ताकि कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को कम किया जा सके। अनुमान है कि बीटी कॉटन की यह नई किस्म एक अन्य कीटनाशक टोबैको कैटरपिलर के प्रति भी असरदार है।

जीएम सोया, मक्का और कॉटन की जीएम फसलों ने 1996 के बाद से कीटनाशकों के उपयोग को 122 मिलियन पाउंड तक बढ़ा दिया है, क्योंकि खरपतवार प्रतिरोधक फसलों की संख्या में भी भारी बढ़ोतरी हुई है (138 मिलियन पाउंड)। 2005 के आंकड़ों के अनुसार इसके मुकाबले

बीटी फसलों की संख्या में सामान्य गिरावट दर्ज की गई है (16 मिलियन पाउंड)। एक और दिलचस्प बात यह भी है कि इन खरपतवार रोधी जीएम फसलों के साथ सुपरवीड्स का निर्माण किया जा रहा है। फिलहाल अकेले अमेरिका में 15 मिलियन एकड़ जमीन घास–फूस के प्रति प्रतिरोधक हो गई है। हर्बिसाइड के दो दशकों तक उपयोग के बावजूद जितने प्रतिरोधी घासफूस पैदा नहीं हुए, उससे कहीं ज्यादा खरपतवार रोधी जीएम फसलें एक दशक में पैदा हो गई हैं। इसके अलावा ग्लाइफोसेट प्रतिरोधी घास–फूस की 30 नई प्रजातियां भी पैदा हो गई हैं।

कीट प्रतिरोधी जीएम फसलों के बारे में भी यह दावा किया गया था कि इस नई तकनीक पर अमल के बाद कीटनाशकों का इस्तेमाल कम हो जाएगा। लेकिन कॉर्नेल यूनिवर्सिटी की चीन में 2006 में की गई स्टडी से यह साफ हुआ है कि बीटी कॉटन उगाने वाले चीनी किसान अपने समकक्ष गैर बीटी फसलें लेने वाले किसानों से कहीं ज्यादा घाटे में हैं। चीन में बीटी कॉटन का आधिकारिक रूप से उपयोग करने के सात साल बाद भी किसान उतना ही कीटनाशक उपयोग में ला रहे हैं, जितना वे बीटी कॉटन के उपयोग से पहले इस्तेमाल किया करते थे। चीन में बीटी कॉटन के प्रयोग के शुरुआती दौर में कीटनाशकों का इस्तेमाल हालांकि कम था, लेकिन खेत में इकोलॉजी का बदलाव इस नाटकीय तरीके से हुआ कि बाद में किसानों के सामने मायरिड बग्स की समस्या पेश आने लगी और अब यह समस्या गंभीर हो गई है। इसके चलते कीटनाशकों के उपयोग की मात्रा फिर से पुराने दौर के समान हो गई है। भारत में भी बीटी कॉटन के साथ किसानों को कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ है। नए कीड़े और नई बीमारियां सामने आई हैं, जिनके कारण किसानों को कीटनाशकों का ज्यादा उपयोग करना पड़ रहा है। भारत में आधिकारिक रूप से किए गए वैज्ञानिक अनुसंधान के अनुसार, वास्तव में भारत के कृषिजन्य परिस्थितियां अलग होने और नियम–कानूनों के अभाव से खेत में प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाने के कारण तकनीकें तेजी से नाकाम हो रही हैं।

यहां यह ध्यान में रखना भी जरूरी है कि जेनेटिक इंजीनियर्ड बीजों को बेचने की कोशिश करने वाली दुनिया की 10 शीर्ष कंपनियों में से चार दुनिया की सबसे बड़ी रासायनिक खाद निर्माता भी हैं। इनके नाम हैंः मोन्सांतो, ड्यू पांट, सिंजेंटा और बेयर। ऐसे में यह मानना गलत होगा कि वे वास्तव में खेतों में रासायनिक खाद का इस्तेमाल कम किए जाने के पक्ष में होंगी। इसके बजाय उनकी कोशिश तो यही होगी कि जीई तकनीक के अधिकाधिक उपयोग से किसी तरह बीजों और रासायनिक खाद दोनों को ही बड़े पैमाने पर बेचा जा सके।

अब यह भी स्पष्ट हो चुका है कि जीई फसलें रासायनिक खाद के इस्तेमाल में कमी के वादे पर खरी नहीं उतर सकी हैं। यह परिणाम कई मायनों में अपेक्षित ही था, क्योंकि जीई तकनीक के तहत पौधे को कुछ इस तरह से इजीनियर्ड किया जाता है कि वह घास–फूस और कीटों के प्रति प्रतिरोधकता हासिल कर लेता है।

• • •

5. जीई फसलें और खाद्यान्न

जीई फसलों का प्रचार हमेशा से ही कुछ इस तरह से किया जाता रहा है जैसे वे दुनिया भर में खाद्यान्नों और कुपोषण की हर समस्या का समाधान हों। खासतौर पर एशिया और अफ्रीकी महाद्वीप में तो यही कहा जाता है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग से पैदा हुई फसलें ही बढ़ती जनसंख्या का पेट भरने का एकमात्र रास्ता है। हालांकि इतिहास बताता है कि खाद्यान्न उत्पादन में कमी भूख और कुपोषण का बुनियादी कारण है ही नहीं। असल में गरीबी और राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी ही भूख और कुपोषण को पोषती है। यह वितरण में असफलता का नतीजा है, न कि उत्पादन में कमी का।

दूसरी बात यह है कि दुनिया में गरीबों का पेट भरने का काम जेनेटिक इंजीनियरिंग से तैयार फसलें नहीं कर रही हैं। ये फसलें तो अमीरों का पेट भरने के लिए हैं। साथ ही इनका उपयोग संपन्न तबके की कारों के लिए एग्रो ईंधन बनाने के लिए होता है। जीई फसलों का उत्पादन दुनिया के उत्तरी कोने के लोगों के लिए उच्च्य प्रसंस्कृत खाद्य सामग्री बनाने में होता है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि जीई फसलें दुनिया के भूखे और गरीब लोगों का पेट भरती हैं। इसके बावजूद अन्न उपजाने वाली जमीन को तेजी से एग्रो ईंधन बनाने के लिए जीई बीज बोने में काम में लाया जा रहा है। वर्ष 2007 में मोन्सांतो कंपनी की बीज बिक्री का एक तिहाई हिस्सा जीएम कॉर्न के रूप में सामने आया है, क्योंकि दुनिया भर में एथेनॉल की मांग लगातार बढ़ रही है। इन सबसे एक बात तो साफ हो जाती है कि जीई बीजों को भूख और कुपोषण मिटाने के लिए नहीं, बल्कि एग्री व्यापार के बढ़ते फैलाव को देखते हुए उगाया जा रहा है।

फसलों का उत्पादन एक जटिल घटना है जो कई घटकों पर निर्भर करती है। इसमें मौसम, सिंचाई के साधनों की उपलब्धता और वातावरण में नमी की मात्रा, भूमि की उपजाउ क्षमता, किसान का प्रबंधन कौशल और खेत में कीटनाशकों का प्रयोग व बीमारियों की रोकथाम के प्रयास प्रमुख हैं। बारीक नजरिए से देखें तो फसल का उत्पादन किसी एक जीन पर निर्भर नहीं करता, बल्कि यह कई कारकों पर निर्भर करता है। क्योंकि कई जीन्स एक साथ और पर्यावरण के साथ मिलकर क्रिया करते हैं। ऐसे में एक तकनीक के रूप में जेनेटिक इंजीनियरिंग अभी भी उन हाई इनपुट हाई रिस्पांस संकर बीजों की तरह उत्पादन की बाधा को तोड़ पाने में नाकाम रही है, जिन्हें हरितक्रांति के दौरान चमत्कारिक बीजों के रूप में प्रचारित किया गया था।

असल में बीटी कॉटन के बीजों की मार्केटिंग के दौरान किसानों को फुसलाया जाता है, ताकि वे बीटी कॉटन के बीज अपनाकर उपज बढ़ाने की बात पर यकीन कर लें।

राउंडअप रेडी सोयाबीन के उपयोग के दौरान फसल की उपज में लगातार कमी देखने को मिली है । इस घटना को यील्ड ड्रैग नाम दिया गया है, खासतौर पर हर्बिसाइड टॉलरेंट (एचटी) फसलों के मामले में। यह माना जाता है कि पौधे के रूट जोन में ग्लायफोसेट की मौजूदगी फ्यूसेरियम नामक पैथोजेन के उत्पादन को बढ़ावा देती है, जिससे पौधे की पोषक तत्वों को सोखने की क्षमता पर असर पड़ता है। राउंडअप रेडी सोया में में ग्लायफोसेट पौधे द्वारा मैंगनीज जैसे पोषक तत्वों को सोखने की क्षमता कम कर देता है, जिससे उत्पादन तो कम पौधे के बीमारियों की चपेट में आने की संभावना भी बढ़ जाती है। यहां तक जीएम तकनीक से रहित फसलों में भी ग्लायफोसेट के अत्यधिक उपयोग से फसलों के फफूंदी की बीमारी की चपेट में आने की आशंका बढ़ जाती है। कनाडा में ऐसा देखा गया है। जीएम सोया के मामले में दुनियाभर के आंकड़े यह बताते हैं कि इनमें गैर जीएम फसलों की तुलना में उत्पादन में 5 से 10 फीसदी की कमी आ जाती है।

अमेरिका में किए गए एक शोध से पता चलता है कि बीटी कॉटन

की उपज कपास की परंपरागत अन्य किस्मों की तुलना में 12 फीसदी कम उपज देती हैं। जब से अमेरिका, अर्जेंटीना, कोलंबिया और आस्ट्रेलिया में बीटी कॉटन का उपयोग शुरू हुआ है, कपास का उत्पादन औसतन घटा है। हालांकि इसके विपरीत चीन में कपास का उत्पादन बढ़ा है, लेकिन यह सवाल अभी भी बना हुआ है कि क्या उत्पादन में हुई यह वृद्धि बीटी कॉटन बीजों के ही कारण हुई है। उदाहरण के लिए चीन के जिन जियांग प्रांत में, जहां देश के कपास का सर्वाधिक उत्पादन होता है किसान अमूमन गैर जीएम कपास बोते हैं । वहां उपज में बढ़ोतरी का कारण उत्पादन से जुड़े कारक हैं, न कि बीटी कॉटन की तकनीक।

भारत में कपास का सबसे ज्यादा उत्पादन गुजरात करता है। वर्ष 2007 में कपास के देशव्यापी उत्पादन में गुजरात का योगदान करीबन 39 प्रतिशत था। कपास उत्पादन के राष्ट्रीय आंकड़ों में गुजरात को शामिल करने से हमें देश के सकल कपास उत्पादन का विश्लेषण करने में मदद मिलती है। पिछले छह साल में (जिस दौरान भारत में बीटी कॉटन को पेश किया गया और इसकी खेती शुरू हुई) कपास की खेती में 33 फीसदी की वृद्धि हुई है, इसमें गुजरात का हिस्सा भी बढ़ा है।

इसके बाद भी बायोटेक का समर्थन करने वाले बीटी कॉटन के बारे में यह प्रचार करते हैं कि भारत में गुजरात समेत अन्य प्रदेशों में कपास की पैदावार में बढ़ोतरी बीटी कॉटन बीजों के कारण ही हुई है। बीटी कॉटन के बारे में गुजरात का आधिकारिक आकलन है, 'कपास के उत्पादन में वृद्धि पानी बचाओ अभियान के फलस्वरूप सिंचाई के साधनों में हुई बढ़ोतरी के कारण भी है। दूसरी ओर पिछले तीन साल से राज्य में बारिश भी अच्छी हुई है। सिंचाई सुविधा, अच्छे मॉनसून, ड्रिप इरीगेशन के उपयोग और कीटनाशकों के दबाव में कमी, काली मिट्टी व कपास की खेती के बारे में किसानों के बढ़ते अनुभवों के कारण भी कपास का उत्पादन बढ़ा है।' भारत के अन्य राज्यों, जैसे मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में कपास का उत्पादन पिछले छह साल के दौरान उतार–चढ़ाव भरा रहा है, जो बीटी कॉटन का समर्थन करने वालों के इस दावे के विपरीत है कि इन राज्यों में कपास का उत्पादन बढ़ा है, क्योंकि यहां

बीटी कॉटन का उपयोग भी बढ़ गया है। मध्यप्रदेश जैसे राज्य में बीटी कॉटन के आने से पहले पांच साल के उपज का औसत बीटी कॉटन आने के बाद के उपज से कहीं अधिक है।

अमेरिका में देश के कृषि विभाग का रिकार्ड भी यही कहता है कि कुछ बीटी कॉटन फसलों से देश को न तो आर्थिक रूप से कोई फायदा हुआ और न ही नुकसान। अध्ययन बताते हैं कि अधिकांश जगहों पर जीई तकनीक को अपनाने के उन्हीं स्थानों पर इच्छित नतीजे मिले है, जहां किसानों के पास ज्यादा जमीन है और जहां के बहुत थोड़े से ही किसान कृषि पर निर्भर हैं। इन तथ्यों से यह नतीजा निकाला जा सकता है कि जीई फसलों से कृषि में खाद्यान्न उत्पादन के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। दूसरी ओर सिस्टम ऑफ राइस इंटेंसिफिकेशन (एसआरआई या चावल की खेती का मैडागास्कर सिस्टम) को अपनाकर धान जैसी बड़ी फसलों का उत्पादन कम पानी और जीई व हाइब्रिड बीजों का उपयोग किए बगैर भी बढ़ाया जा सकता है।

इसके अलावा जीई तकनीक को अपनाते समय खाद्य सुरक्षा को सुधारने के लिए अत्यधिक सावधानी की जरूरत होती है, क्योंकि जीई फसलों ने खुद को अनिश्चित और अस्थाई साबित कर दिया है, खासकर प्रतिकूल परिस्थितियों में। मौसमी बदलाव के इस जमाने में खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के लिए जीएम फसलों को अपनाना अक्लमंदी का काम नहीं है।

जीई फसलें और पोषक तत्व

बायोटेक के समर्थक अक्सर यह दलील देते हैं कि जीई फसलों में पोषक तत्व ज्यादा होते हैं। यहां पोषक के मायने प्रोटीन/विटामिन से भरपूर खाद्य पदार्थों से है। जीएम फसलों की डेढ़ दशक की व्यावसायिक खेती के दौरान और कई शोध अध्ययनों के बाद हमें इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। हां, इस बात के सुबूत जरूर मिलते हैं कि जीई फसलों के पोषक तत्वों में बदलाव आया है। इस मामले में गोल्डन राइस का मामला मिसाल के बतौर पेश किया जाता रहा है।

कुदरती रूप से उगाए जाने वाले चावल की किस्मों में बीटा कैरोटीन नाम का रसायन या अन्य कैरोटीनॉइड्स नहीं होता है, जिसे शरीर रैटीनॉल नामक विटामिन ए के अणुओं के रूप में परिवर्तित कर दे। पौधे वास्तव में कैरोटिनॉइड्स से भरपूर होते हैं, लेकिन चावल में वे उसके हरे भाग में रहते हैं, (जिसे फेंक दिया जाता है) ऐंडोस्पर्म में नहीं।

गोल्डन राइस

कीट प्रतिरोधी बीटी पौधों, कीटनाशक रोधी पौधों और अत्यधिक विवादास्पद टर्मिनेटर टेक्नोलॉजी के खिलाफ विरोध को देखते हुए बायोटेक कंपनियों ने एक नया मंत्र अपनाया है और वह है गोल्डन राइस। यह चावल की किस्म है, जिसे डैफोडिल्स (नारसिसस स्यूडोनारसिसस) और बैक्टीरिया (इरविनिया यूरेडोवारा) की कुछ जीन्स को इंजीनियर्ड कर तैयार किया जाता है। ऐसा बीटाकैरोटीन के निर्माण के लिए मेटाबोलिक पाथवेज बनाने के मकसद से किया जाता है, जो विटामिन ए का पूर्वगामी है।

इस तकनीक का विकास स्विस फेडरल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी ज्यूरिच के इंस्टीट्यूट ऑफ प्लांट साइंस से जुड़े वैज्ञानिकों, इंगो पोर्टिकस और जर्मनी स्थित फ्रीबर्ग यूनिवर्सिटी में एप्लाइड बायोसाइंस के पीटर बेयर ने किया था। इस शोध को रॉकफेलर फाउंडेशन (1991–2002), यूरोपीय परिसंघ, यूरोपीय कम्युनिटी बायोटेक प्रोग्राम (1996–2000) और स्विस फेडरल ऑफिस ऑफ एजुकेशन एंड साइंस (1996–2000) ने प्रायोजित किया था।

शरीर में विटामिन ए की कमी दुनियाभर में पोषण की एक बड़ी समस्या है। एशिया और अफ्रीका में 100 मिलियन से ज्यादा बच्चों को विटामिन ए की पर्याप्त खुराक नहीं मिल पाती, जिससे इन देशों में बच्चों में अंधेपन की समस्या बढ़ रही है। विटामिन ए की कमी से हर साल करीब बीस लाख बच्चों की मौत हो जाती है। लिवर, अंडे की जर्दी, चिकन, मांस, दूध, मक्खन आदि से विटमिन ए मिलता है। विटामिन ए का पूर्वगामी बीटा कैरोटीन पौधों की हरी पत्तियों में पाया जाता है। इसके अलावा

यह पालक, गाजर, पंपकिन, आम, ड्रमस्टिक और कई अन्य पत्तेदार सब्जियों में भी मिलता है, जो कि आधुनिक कृषि में घास–फूस माने जाते हैं। विटामिन ए की कमी का प्रमुख कारण खाद्य विविधता की कमी और विटामिन व मिनरल से भरपूर खाद्य पदार्थों तक गरीबों की पहुंच की कमी है।

गोल्डन राइस में वाकई ज्यादा पोषण है?

इसके लिए जरूरी एन्जाइम का सटीक जीन कोडिंग डैफोडिल के नाम से पहचाना जाता है, जिसे नारसिसस स्यूडोनारसिस भी कहते हैं और ये फंगल एग्राबैक्टीरियम (एरविनिया यूरेडोवारा) में पाए जाते हैं। इस जीन्स को सबसे पहले ताईपेई 309 राइस में इस्तेमाल किया गया था । इसमें एगाबैक्टीरियम ट्यूमेफेसियन्स की सहायता ली गई थी। परिवर्तित पौधे में एक से तीन तक ट्रांसजेनिक जीन्स की कॉपी पाई गई थी। इन चार जीन्स से उगाए गए 10 पौधों में सामान्य वानस्पतिक गुण नजर आए थे, जो कि पूरी तरह से उर्वर और पीले रंग के एंडोस्पर्म से युक्त थे। इससे यह साबित होता है कि इसमें कार्टिनॉइड फॉरमेशन भी मौजूद था। ग्रीनहाउस में पौधों से प्राप्त एक ग्राम चावल में 1.6 माइक्रोग्राम कार्टिनोइड की मौजूदगी पाई गई थी। इस तरह एक ग्राम चावल में 1.6 ग्राम कार्टिनोइड के आधार पर हम गोल्डन राइस में विटामिन ए की मात्रा की गणना कर सकते हैं। रोजाना स्कूल जाने वाले तीन साल से कम उम्र के और चार से छह साल की उम्र के बच्चों में इस विटामिन की आवश्यकता क्रमशः 124 से 185 ग्राम है।

फिलहाल भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद गोल्डन राइस की जीन्स को चावल की भारतीय किस्मों/संकर प्रजातियों में परिवर्तित करने की कोशिश कर रहा है। उसने घोषणा की है कि इस चावल की भारतीय प्रजाति को भारतीय बाजार में जल्द ही उपलब्ध करा दिया जाएगा।

गोल्डन राइस में कैरोटेनॉइड के स्तर के आधार पर चावल की इस किस्म में प्रतिदिन 198 माइक्रोग्राम और 296 माइक्रोग्राम विटामिन ए उपरोक्त आयु समूह के बच्चों को दिया जा सकता है। चावल की इस

किस्म में उपलब्ध विटामिन ए या इसका रेटिनल समकक्ष विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 1/6 है, वहीं भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के मुताबिक यह लिए जाने वाले सकल कैरोटिनॉइड का 1/4 है। ऐसे में आहार के बतौर रोजाना लिए जाने वाले (आरडीआई) के आधार पर विटामिन की 400 आरई की मात्रा को देखते हुए कहा जा सकता है कि गोल्डन राइस के उपभोग से शून्य से तीन साल तक के बच्चों में केवल 8 से 12.5 फीसदी और चार से छह साल तक की उम्र के बच्चों में 12.5 से 18.7 प्रतिशत विटामिन की आपूर्ति हो सकती है। वयस्कों में पुरुषों में 420 ग्राम और महिलाओं में 345 ग्राम विटामिन की आपूर्ति 600 आरडीआई के बराबर होनी चाहिए। इस प्रकार वयस्कों में गोल्डन राइस से मिलने वाले विटामिन की मात्रा पुरुषों में 18 से 26 प्रतिशत और महिलाओं में 15 से 23 प्रतिशत मानी जा सकती है। इन आकलनों के आधार पर अगर यह मान लिया जाए कि गोल्डन राइस से विटामिन की आपूर्ति होती है तो यह गलत होगा। इसका कारण यह है कि विटामिन ए वसा या तेल में तो घुल सकता है पर पानी में नहीं। इसके कारण पकाते समय चावल से विटामिन ए के नष्ट हो जाने की पूरी संभावना होती है।

गोल्डन राइस का उदाहरण जीई फसलों की पोषक क्षमता का स्पष्ट चित्रण है, जिनके बारे में यह दावा किया जाता है ये पोषण से भरपूर हैं। असल में ये कुपोषण की समस्या का हल नहीं हैं, जैसा कि कहा जा रहा है, खासतौर पर तब जबकि मौजूदा खाद्य व्यवस्था में देश के पास वैविध्यतापूर्ण और निर्वाहकारी खाद्य व्यवस्था उपलब्ध है। ऐसे खाद्य पदार्थ, जिनकी खेती नहीं होती (ज्यादातर हरी सब्जियां) और जो परंपरागत रूप से उगाई जाती हैं, अपनी पोषकता के लिए जानी जाती हैं। लेकिन खेती के कामों में आए तेज विकास ने इन हरी सब्जियों को गरीबों की पहुंच से दूर कर दिया है।

• • •

6. जीई और आनुवांशिकीय नुकसान

जीनोम के भीतर जीन के नियमन के बारे में अभी तक आधुनिक विज्ञान काफी हद तक अनजान है। इसीका नतीजा है कि इसका प्रतिलिपिकरण न हो सकने के बावजूद यह माना जा रहा है कि यह प्रतिलिपिकरण करने लायक है। दरअसल, प्रमोटर्स और बाजार ने मिल कर यह धारणा बनाई है। इसके बहुत से अनपेक्षित परिणाम मिले हैं। मिसाल के लिए यह पता लगा है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग के साथ उन प्रोटीन्स की भी कोडिंग करनी पड़ती है, जो अज्ञात क्रियाओं के लिए उत्तरदायी हैं। इसके असर के बारे में फिलहाल कुछ भी पता नहीं चल सका है। वैसे जीई तकनीक से तीन–चार संभावनाएं उभरती हैं । इनमें से ज्यादातर बायोसेफ्टी (मानव पर जीएमओ के असर के प्रति सुरक्षात्मक उपायों, जो अन्य जीवधारियों और पर्यावरण पर भी लागू हों) के ढांचे में ही वर्गीकृत किए गए हैं।

कृषि के मोर्चे पर एक और भी संभावना उभरती है, जिसमें जीई फसलों की परंपरागत पद्धति से उगाई जाने वाली अन्य फसलों से उपज, कीट प्रतिरोधण, खेती की लागत और अन्य मुद्दों पर तुलना की जाती है। ऐसे में इस खंड में हम जीई फसलों के बायोसेफ्टी से जुड़े पक्ष के बारे में चर्चा करेंगे।

विषैलेपन में बदलाव या पोषण गुणवत्ता

इसका मतलब यह है कि जिस भोजन को अब तक सुरक्षित माना जाता था, हो सकता है कि उसके आंतरिक संघटन और एलर्जेन्स, टॉक्सिन्स, विटामिन्स और एंटी ऑक्सीडेंट्स आदि के प्रति उसकी प्रभावशीलता को बदला गया हो। कई जीई खाद्य पदार्थों में कुछ ऐसे विटामिन्स नहीं

मिलते, जो उसके समकक्ष खाद्य पदार्थों में पाए जाते हैं। ऐसे में यह कहा जा सकता है कि खाद्य पदार्थों की गुणक्ता और सुरक्षा मानकों को बदला गया है। हालांकि ऐसे जेनेटिक मॉडिफाइड आर्गेनिज्म को बाजार में पेश करने से पहले की जाने वाली टेस्टिंग के दौरान ये बदलाव नजर नहीं आते हैं, क्योंकि सभी यही नहीं जानते कि कौन से सवाल पूछे जाने हैं। यही वजह है कि टेस्टिंग डिजाइन और ऐसी फसलों के प्रभाव को आंकने के तौर–तरीकों को ताक पर रख दिया जाता है।

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यह मानव का प्रकृति के साथ अंर्तसंबंध बनाने की प्रक्रिया है। सावधानी से चुन–चुनकर उगाए गए पौधों का नतीजा हमारे सामने कृषि और गैर कृषि उत्पादों के रूप में है, जिनमें हमें विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। सबसे अहम बात तो यह है कि इन खाद्य पदार्थों को सदियों के प्रयासों के बाद बड़ी हिफाजत से सुरक्षित बनाया गया है। जीई में वह ताकत है जो सुरक्षित खाद्य पदार्थों को भी असुरक्षित बना सकती है।

नीचे कुछ अध्ययन के नतीजे दिए जा रहे हैं, जिन्हें जीएम खाद्य पदार्थों के विषैलेपन को आंकने के लिए किया गया था। यहां यह देखना जरूरी है कि विभिन्न जीई फसलों के प्रभाव को लेकर स्वतंत्र प्रकृति के अध्ययन बहुत कम हुए हैं। इसका एक कारण यह है कि ऐसे अध्ययनों के लिए धन उपलब्ध कराने में बेहद मुश्किल आती है, जिससे इनकी वैज्ञानिक आधार पर समीक्षा भी नहीं हो पाती है।

1. 1996 में अमेरिका के नेब्रास्का में जीई खाद्य पदार्थों से जुड़ा एक बड़ा हादसा तब टल गया, जब शोधकर्ताओं ने पाया कि ब्राजील नट्स के जीन्स को काटकर सोयाबीन में प्रत्यारोपित करने के बाद पैदा हुई फसल में एलर्जी पैदा करने वाले गुण मौजूद थे। यह उन लोगों के लिए नुकसानदेह था, जिन्हें ब्राजील नट से एलर्जी की शिकायत थी। फूड एलर्जी की शिकायत वाले लोग अचानक मौत का शिकार भी हो सकते हैं। ऐसे में वे खाद्य पदार्थ, जिनमें विदेशी जीन्स को मिलाया गया हो, खासा नकसान पहुंचा सकते हैं।
2. 1998 में ब्रिटेन के स्कॉटलैंड स्थित रॉलेट रिसर्च इंस्टीट्यूट में हंगरी

मूल के पोषण विशेषज्ञ और टॉक्सिकोलॉजी विज्ञानी डॉ. अर्पाड पुस्ताई ने जीएम आलू का तीन साल तक चूहों पर परीक्षण के बाद सौंपी अपनी प्राथमिक रिपोर्ट में कहा कि इन आलुओं को खाने के बाद चूहों के शारीरिक अंगों के आकार में अप्रत्याशित वृद्धि पाई गई। इससे चूहों के लिवर और दिल के आकार में कमी आई, साथ ही दिमाग भी छोटा हो गया। इस बात के कोई संकेत नहीं मिले कि चूहों की शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो गई है। एक टीवी शो के दौरान इस बात की रिपोर्ट देते ही उन्हें नौकरी से हटा दिया गया, साथ ही वैज्ञानिक समुदाय ने भी उन्हें अलग–थलग कर दिया। यह संभावना व्यक्त की जा रही है कि चूहों द्वारा उन आलुओं को खाने के बाद उनकी गट लाइनिंग क्षतिग्रस्त हो गई थी, क्योंकि आलू में कॉलीफ्लॉवर मोजेक वायरस का उपयोग किया गया था, जो कि अमूमन सभी जीएम फसलों में इस्तेमाल किया जाता है।

3. मोन्सांतो के लिए 1998 में किए गए एक गोपनीय परीक्षण की हाल में जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि डॉ. अर्पाड के परीक्षण में शामिल चूहों के अंगों को जीएम आलुओं से खास नुकसान पहुंचा था। रूस के एकेडमी ऑफ मेडिकल साइंसेज में इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रीशन द्वारा किए गए इस अध्ययन में आठ वर्षों के लंबे अनुसंधान के बाद पता चला कि सामान्य तौर पर उगाए गए आलुओं को खाने वाले चूहे स्वस्थ थे और उनके अंग सामान्य अवस्था में ही रहे, साथ ही उत्तकों को भी कोई नुकसान नहीं पहुंचा था। इस अध्ययन में मोन्सांतो के जीएम न्यू लीफ पोटैटो ब्रेड नाम के आलुओं को शामिल किया गया था। 1995 में तैयार ये आलू रसेट बरबैंक प्रजाति के थे और इन्हें कोलेराडो बीटल्स के प्रति प्रतिरोधक क्षमता से लैस किया गया था। इन्हें 082 के रूप में रजिस्टर्ड किया गया था और ये आलू जीएम फसलों के बीटी ग्रुप में शामिल थे। उनमें एंटीबायोटिक रेजिस्टेंट मार्कर भी मौजूद थे। अब तक परीक्षण में शामिल जीएम उत्पादों में ये आलू सबसे खतरनाक खाद्य पदार्थ हैं । इन परीक्षणों के आधार पर कहा जा सकता है कि ये लोगों के पोषण के लिए उपयोग में नहीं लाए जा सकते हैं।

4. 1999 में जर्नल ऑफ मेडिसिनल फूड्स में प्रकाशित डॉ. मार्क लैपे के अध्ययन में पता लगा कि जीई सोयाबीन में फाइटो एस्ट्रोजेन कंपाउंड नामक प्रोटीन का घनत्व आम सोयाबीन से कम पाया गया जो दिल की बीमारी और कैंसर से बचाव में अहम होता है। यह जेनेटिक इंजीनियरिंग का प्रभाव है।
5. रूस के एकेडमी ऑफ साइंसेज में इंस्टीट्यूट ऑफ हायर नर्वस एक्अीविटी एंड न्यूरोफिजियोलॉजी की वैज्ञानिक इरीना एरमाकोवा द्वारा 2005 में किए गए एक अध्ययन में मिले प्रारंभिक नतीजे बताते है कि जीएम सोया खाद्य पदार्थ खाने के बाद ज्यादातर चूहे शारीरिक अंगों में विकृति के चलते मर गए, जबकि सामान्य सोया फीड खाने वाले चूहों में ऐसा नहीं हुआ। परीक्षण में तीन हफ्तों के बाद ही 45 में से 25 चूहे मर गए (55.6 प्रतिशत), जबकि गैर जीएम सामान्य फीड लेने वाले 33 में से तीन चूहों की ही मौत हुई (9 प्रतिशत)। गैर सोया फीड खाने वाले 44 में से 3 चूहों की ही मौत हुई (6.8 प्रतिशत)। इस नतीजे से साफ है कि परंपरागत सोया फीड से चूहों पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है, जबकि जीएम सोया फीड से चूहों के मरने की दर आठ फीसदी बढ़ जाती है। इरीना ने जिस सोया फीड का परीक्षण किया, वह मोन्सांतो की राउंड अप रेडी वैराइटी था, जिसमें ग्लाइफॉस्फेट का बर्दाश्त करने वाले बैक्टीरियल जीन्स मिलाए गए थे। इसके अलावा 2007 में रूस के वाविलोव एग्रेरियन यूनिवर्सिटी में किए गए एक अध्ययन में पता चला कि खरपतवार रोधी मोन्सांतो के राउंड अप रेडी सोया में, जिसे रूसी परिसंघ और अन्य कई देशों में इंसानों के उपयोग के लिए स्वीकृत किया गया था, चूहों के लिवर, किडनी और टेस्टिस की मोर्फोलॉजी को बदलने वाले तत्व मौजूद थे। इसके अलावा ये चूहों के हिस्टोलॉजिकल और सेल कल्चर को भी बदल सकते थे। जीएम सोया शरीर के आकार को कम करने के साथ युवाओं की मृत्यु दर को भी बढ़ा सकता है।
6. इटली के यूनिवर्सिटी ऑफ उरबिना में 2003 से 2005 तक किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि जिन चूहों ने जीएम सोया फीड

खाया था, उनके लिवर की कोशिकाओं में एक नाभिक पाया गया, जो फीड में विषैले तत्वों की अत्यधिक मात्रा के प्रति प्रतिक्रियास्वरूप बना था। इन चूहों के अग्नाशय में एंजीइम का उत्पादन भी अप्रत्याशित रूप से कम हो गया था। अपनी रिपोर्ट में शोधकर्ताओं ने कहा कि जीएम सोया फीड खाने वाले युवा चूहों के लिवर, अग्नाशय और शुक्र ग्रंथि की कोशिकाओं पर विपरीत असर पड़ा था।

7. पकाए गए जीएम सोया खाद्य पदार्थ में सोया लैक्टिन की मात्रा दोगुनी पाई गई है, जो पोषक तत्वों को आत्मसात करने की क्षमता को रोक सकते हैं। जीएम सोया में मिलाए गए जीन्स के कारण एक ऐसा प्रोटीन बनता है, जो एलर्जेन्स से मिलता–जुलता है।
8. जीएम फसलों से बने खाद्य पदार्थों का एकमात्र मानवीय परीक्षण इंग्लैंड के न्यूकैसल में किया गया था। जनवरी 2004 में नेचर बायोटेक्नोलॉजी में प्रकाशित परीक्षण के नतीजों के अनुसार, जीएम सोया उत्पाद को इंसान द्वारा खाए जाने के बाद उत्पाद में मिलाया गया जीन आंतों में मौजूद बैक्टीरिया के डीएनए में स्थानांतरित हो जाता है। इसका यह मतलब निकला कि जीएम सोया उत्पादों को खाना बंद कर देने के बाद भी आंतों के बैक्टीरिया आपकी पाचन प्रणाली के भीतर एलर्जी फैलाने वाले प्रोटीन का उत्पादन जारी रख सकते हैं।
9. 2003 में जीएम कॉर्नफील्ड के बगल में रहने वाले फिलीपीनोज को त्वचा, वसन प्रणाली और अमाश्य में संक्रमण और बुखार की शिकायत हो गई। उस समय मक्के की फसल अंकुरित हो रही थी। अगले साल भी मक्के की फसल के अंकुरण के दौरान ही फिलीपीनो में यही लक्षण फिर नजर आने लगे। 39 फिलीपीनोज के रक्त परीक्षण से यह पता चला कि जीएम कॉर्न के कारण उनमें बीटी टॉक्सिन के प्रति इम्यून रिस्पांस पैदा हो गया है।
10. 2004 में मोन्सांतो कंपनी की एक अध्ययन रिपोर्ट में जीएम बीटी ज्वार की नई प्रजाति के गोपनीय परीक्षण में पता चला कि इन्हें खाकर चूहों को खासा नुकसान पहुंचता है। इस प्रजाति को एमओएन

863 नाम दिया गया है। अध्ययन में चूहों की किडनी में विकृति और सफेद रक्त कणिकाओं की मात्रा में बढ़ोतरी पाई गई थी।

11. कैनबरा स्थित कॉमनवेल्थ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च आर्गेनाइजेशन के वैज्ञानिकों ने 2005 में एक ट्रांसजेनिक मटर पर परीक्षण किया, जिसकी फलियों में सामान्यतः अहानिकारक प्रोटीन पाया जाता है (एलु एमिलेज इनहिबिटर 1)। परीक्षण से पता चला कि इसे खाने से चूहों के फेफड़ों में जलन और अन्य खाद्य पदार्थों में मौजूद प्रोटीन्स के प्रति एलर्जी की शिकायत होती है। अमेरिकी खाद्य व दवा प्रशासन के पास 1990 के पूर्वार्द्ध में किए गए उस शोध के आंकड़े उपलब्ध हैं, जिसमें पाया गया है कि एंटीसेंस जीन्स वाले जीएम टमाटरों को खाकर चूहों की आंतों में छोटे–छोटे घाव हो गए। उसके बाद अमेरिका में खाद्य पदार्थों की नियंत्रण प्रणाली ही बदल दी गई। कुछ शोधकर्ताओं ने यह भी चेतावनी दी है कि अधिकांश जीई फसलों में पाए जाने वाले एंटीबायोटिक प्रतिरोधी मार्कर जीन्स (एआरएम) पर्यावरण में पाए जाने वाले संक्रमणकारी बैक्टीरिया और सूक्ष्मजीवियों के साथ अनपेक्षित रूप से जुड़ सकते हैं। ये ऐसे जीएम खाद्य पदार्थों को खाने वाले पशुओं की आंतों में भी पहुंच सकते हैं। जर्मन वैज्ञानिकों ने तो जेनेटिक मॉडिफाइड रेप्सीड के पौधों को खाने वाली मक्खियों की आंतों में भी एंटीबायोटिक रेजिस्टेंट बैक्टीरिया के अंश पाए हैं। विभिन्न बीटी जीन्स में एलर्जी पैदा करने वाले या इम्यूनोजेनिसिटी पैदा करने वाली प्रवृत्ति के बारे में और भी कई अध्ययन हुए हैं। ऐसे ही अध्ययन कॉलीफ्लॉवर मोजेक वायरस पर भी हुए हैं । सभी के नतीजे उपरोक्त अध्ययनों की बातों को साबित करते हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव पैदा करने वाले बदलाव

कृषि में जेनेटिक इंजीनियरिंग के उपयोग से विभिन्न पर्यावरणीय प्रभाव अपेक्षित हैं, जिन्हें पेस्ट एंड डिसीज इकोलॉजी, या अनइंटेंडेड बेनिफिशियल आर्गेनिज्म, सॉइल माइक्रोबियल एक्टिविटी पर, कीटों और खरपतवारों के प्रति प्रतिरोधकता पर और आखिर में जीन ट्रांसफर के कारण होने

वाले बायोलॉजिकल प्रदूषण के रूप में पैदा हुए प्रभाव के तौर पर बांटा जा सकता है।

ए. जीई तकनीक में बाहर बहने वाली जेनेटिक आउटक्रॉसिंग इस तकनीक का सबसे बड़ा खतरा है। ट्रांसजेनिक कृषकों से गैर ट्रांसजेनिक कृषकों में जीन का बहाव एक विशिष्ट संभावना है। ऐसे में संबंधित ट्रांसजीन और उनके जंगली संबंधियों का संचय कई अनपेक्षित उत्पादों को जन्म देता है। इसका इको सिस्टम और खाद्य सुरक्षा पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। कृषिजन्य परिस्थितियों में ज्यादातर मामलों में शारीरिक रूप से भी ऐसी जीई फसलों को अन्य फसलों से अलग नहीं किया जा सकता है। जेनेटिक विस्थापन के कारण जैव विविधता में कमी की भी संभावना हो सकती है। क्योंकि ट्रांसजेनिक पौधों को कुछ कारणों से इको सिस्टम में लाभ मिलता है।

इन सब कारणों से भंडारित बीजों में भी जैविक और/या भौतिक संक्रमण को रोकना संभव नहीं है। साथ ही आसपास की जंगली प्रजातियों में भी संक्रमण का खतरा रहता है। अमेरिका में जीई के मैदानी परीक्षण के दौरान ही पैदा हुए लंबे दानों वाले चावल के कई टन को अंतरराष्ट्रीय बाजार से वापस लेना पड़ा था। इससे अमेरिकी किसानों को लाखों डॉलर का नुकसान झेलना पड़ा, क्योंकि एक के बाद एक कई देशों ने उनके उत्पादों को खारिज कर दिया। 23 देशों में 2007 में फसल में संक्रमण के 39 मामले दर्ज हुए (जीएम से गैर जीएम फसलों में), जबकि एक दशक की बात करें तो 57 देशों में दर्ज हुए मामलों की संख्या 200 से ज्यादा है।

बी. ऐसे ही अनपेक्षित प्रभाव फसल पर मंडराने वाले लाभदायक कीड़ों पर भी हुए हैं। वैज्ञानिक परीक्षणों से यह बात साबित हो चुकी है। अगर इन प्रभावों का आकलन करने वाला हमारा तंत्र व्यापक हो तो इन्हें परोक्ष और अपरोक्ष दोनों तरीकों से दर्ज किया जा सकता है। हाल ही में यह पता चला है कि बीटी मक्के की किस्म एमओएन 810 और बीटी 11 से निकलने वाले बीटी पराग (सीआरवाय 1 एबी) से लंबे समय तक संपर्क रहने पर मोनार्क तितली के लार्वा पर विपरीत असर पड़ता है।

वह भी तब, जबकि बीटी मक्के की इस किस्म में बीटी पराग की मात्रा बीटी 176 से कहीं कम होती है। हालांकि पराग के कम अवधि (4–5 दिन तक) के प्रभावों के बारे में अभी पता नहीं लगाया गया है, लेकिन लंबी अवधि (दो साल) के प्रभावों का आकलन करने पर पता चला है कि मोनार्क तितलियों के 20 फीसदी कम लार्वा ही इसके असर से वयस्कता की उम्र तक पहुंच सकते हैं। इसी तरह से बीटी मक्के के खेत में पहुंचने वाली लाभदायक लेडीबर्ड बीटल्स की संख्या भी गैर बीटी मक्के के खेतों के मुकाबले कम होती है। हालांकि लेडीबर्ड बीटल्स एफिड्स, पराग, यूरोपियन कॉर्न बोरर एग्स और अन्य कीटों द्वारा दिए गए अंडों को खाती हैं, इसलिए कई माध्यमों से उन पर बीटी के विषैलेपन का असर पड़ सकता है।

2007 में अमेरिका की नेशनल अकादमी ऑफ साइंसेज में लोयोला यूनिवर्सिटी के एक हालिया अध्ययन में पाया गया कि बीटी मक्के के खेतों से निकलने वाले बीटी टॉक्सिन के रूप में पराग व अन्य तत्व पास के जल स्रोतों में घुल जाते हैं। इससे कैडीजफ्लाइज नाम के एक जलीय कीट के विकास पर असर पड़ता है, जो कि फसल में उपयोग किए गए कीटनाशकों से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है। शोधकर्ताओं ने इंडियाना प्रांत में फसल से निकले अवशिष्ट के 12 जल स्रोतों में घुलने की जांच करने के बाद बताया कि बीटी कॉटन के इन स्रोतों में जा मिलने के रास्ते उपलब्ध हैं। इन शोधकर्ताओं ने फसल के अवशिष्ट को प्रयोगशाला में कीटों को खाने को दिया। इससे पता चला कि प्रोटीनयुक्त आहार लेने की अपेक्षा इन अवशिष्टों को खाने पर कीटों का विकास आधा ही रह जाता है। इसके अलावा जल स्रोतों में घुलने वाले पराग की मात्रा अधिक होने पर कैडीज मक्खियों के मरने की दर 43 फीसदी तक हो जाती है, जो कि अलक्षित कीट हैं।

सी. जीई पौधों के कारण जमीन में रहने वाले जीवधारियों के व्यवहार में भी बदलाव देखा गया है। इसके अलावा जमीन के साथ उनके संबंधों और लार से भी मिट्टी का बायोस्फियर बिगड़ता है। आस्ट्रेलिया के एक सीएसआरओ की स्टडी में यह बात सामने आई है। खेत की उसी

मिट्टी पर बाद में बोई जाने वाली फसलों पर भी इसका असर रहता है। यह प्रभाव पौधों के विकास, उनकी भौतिक क्रियाओं और बीमारियों से जुड़ा होता है। हालांकि इन सभी प्रभावों के बारे में अभी अध्ययन किया जा रहा है। अमेरिका की पर्यावरण संरक्षण एजेंसी के वैज्ञानिक सलाहकार मंडल के अनुसार, बीटी के प्रोटीन न सिर्फ फसल के खेत में उगे होने के दौरान राइजोस्फियर सॉइल में मौजूद रहते हैं, बल्कि फसल कटने के बाद भी लंबे समय तक उनकी मौजूदगी देखी जा सकती है। मंडल ने उन अध्ययनों की ओर भी ध्यान दिलाया है, जिनके मुताबिक बीटी प्रोटीन की मौजूदगी कुछ मिट्टी में 234 दिनों तक भी रह सकती है। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि जीएम फसलों से मिट्टी में मौजूद बैक्टीरिया (फायदेमंद या पैथोजेनिक) में समानांतर जीन का स्थानांतरण होता है।

डी. बीटी कॉटन जैसी फसलों में कीटों की इकोलॉजी भी अप्रत्याशित तरीके से बदल रही है। किसी विशेष बीमारी पर नियंत्रण के मकसद से तैयार की गईं जीएम फसलें बीमारियों की तस्वीर ही बदल रही हैं। यह उन्हें सेकेंडरी बीमारी में बदल रही है, जो कि चिंता का विषय है। इसके अलावा सुपर पेस्ट कहे जाने वाली लक्षित बीमारियों में प्रतिरोधी क्षमता का विकास होना भी चिंताजनक है। इस कारण इन बीमारियों पर नियंत्रण के लिए हमेशा नवीनतम उपायों की जरूरत पड़ती है। चीन से मिले आंकड़ों से पता चलता है कि बीटी फसलें अन्य माध्यमिक बीमारियां पैदा कर सकती हैं, जिनमें एफिड्स, लायगस बग्स, व्हाइट फ्लाई, कारमाइन स्पाइडर माइट और थ्रिप्स आदि प्रमुख हैं। शोध से यह भी पता चला है कि बीटी कॉटन के खेत में लाभदायक परजीवियों की जनसंख्या में भी काफी कमी आई है, खासतौर पर माइक्रोपोलोटिस (88.9 प्रतिशत कमी), कैम्पोलेटिस क्लोराइड (79.2 प्रतिशत कमी)।

कॉर्नेल यूनिवर्सिटी द्वारा 2006 में किए गए अध्ययन के अनुसार, चीन में जो बीमारियां पहले माध्यमिक मानी जाती थीं, अब वही प्रमुख बन गई हैं। इसके कारण खेतों में कीटनाशकों का उपयोग उस स्तर तक जा पहुंचा है, जो बीटी कॉटन को अपनाते समय इस्तेमाल में लाई

गई थीं। स्विटजरलैंड के न्यूकैटल यूनिवर्सिटी द्वारा किए गए एक अन्य नवीनतम अध्ययन (2007) में शोधकर्ताओं ने पाया कि बीटी मक्के की फसल में एमीनो एसिड की मात्रा उनके समकक्ष गैर बीटी फसलों की तुलना में कहीं ज्यादा है, जिससे ये फसलें एफिड्स के प्रति अधिक संवेदनशील हो गई हैं।

यूनिवर्सिटी ऑफ एरिजोना के अध्ययन की 2008 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार, बुलवर्म को लक्ष्य बनाकर तैयार की गई बीटी फसलों में इस कीट के प्रति प्रतिरोधकता पैदा हो गई है। इससे साफ है कि बीटी फसलों के हानिकारक होने का मुद्दा सिर्फ एक कल्पना नहीं है। शोधकर्ताओं के अनुसार यह विकास का सक्रिय क्रम है। बीटी प्रतिरोधी हेलिकोवेरपा मक्के की प्रजाति की आबादी एक दर्जन से भी अधिक है। ये प्रजातियां अमेरिका के मिसिसिपी और एरिजोना प्रांत में 2003 से 2006 के बीच खेतों में पाई गई थीं। यूनिवर्सिटी ऑफ एरिजोना के कीटविज्ञानियों ने आस्ट्रेलिया, चीन, स्पेन और अमेरिका में बीटी फसलों में छह बड़ी बीमारियों के 1996 से आंकड़े इकट्ठे करने के बाद ये नतीजे निकाले हैं। शोधकर्ताओं ने पाया है कि बीटी कॉटन और बीटी मक्के के पौधों ने अब तक की जानकारी में कीटों की सबसे बड़ी प्रतिरोधी क्षमता विकसित कर ली है। इन नतीजों ने बीटी फसलों के आलोचकों को सबसे ज्यादा भयभीत किया है।

ई. खरपतवार रोधी फसलों को ज्यादा पैमाने में अपनाए जाने का सीधा मतलब यह है कि इनके प्रतिरोधी घास–फूस भी बड़े पैमाने पर उगेंगे और वे सुपरवीड्स में बदल जाएंगे। ग्लाइफोसेट जैसे खतरपतवार नाशकों के व्यापक उपयोग से भी कई समस्याएं पैदा हो सकती हैं। ग्लाइफोसेट फायदेमंद कीटों, रीढ़रहित कीटों और मछलियों पर असर डालता है। यह इन कीटों और जीवधारियों के रहवास को नष्ट कर देता है। गलाइफोसेट छोटे प्राणियों और पक्षियों पर भी अपना प्रभाव डालता है। इसके अलावा ग्लाइफोसेट इंसान पर शारीरिक दुष्प्रभाव भी डाल सकता है। ग्लाइफोसेट पौधों में पोषण के फिक्सेशन को भी प्रभावित करता है, जिसके बारे में पहले बताया जा चुका है।

समानांतर जीन ट्रांसफर में वृद्धि (एचजीटी) जीएम फसलों की एक और खासियत है, जो मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचा सकती है। एचजीटी में असंबंधित नस्ल के जीवधारियों की कोशिकाओं और जीनोम के बीच जेनेटिक मटीरियल का स्थानांतरण किया जाता है। यह प्रक्रिया प्रजनन से अलग होती है। प्रकृति में एचजीटी की प्रक्रिया आमतौर पर बैक्टीरिया और वायरसों के जरिए संपन्न होती है। जीई को इस प्रक्रिया की रफ्तार बढ़ाने वाला माना जाता है। एचजीटी का एक और माध्यम सभी नग्न किोशिकाओं के ट्रांसजेनिक डीएनए को मिलाना और जोड़ना, कीटों में ट्रांसजेनिक डीएनए का इंजेक्शन लगाना भी है। एचजीटी के कारण अनपेक्षित संक्रमण और उसके साथ अनिश्चित नतीजे सामने आ सकते हैं। उदाहरण के लिए एप्लाइड एंड इन्वायरनमेंटल माइक्रोबायोलॉजी में 1999 में प्रकाशित एक शोध के अनुसार, इंसानों द्वारा बायोटेक खाद्य पदार्थों के सेवन से उनमें मौजूद एंटीबायोटिक रेजिस्टेंट जीन्स मानव लार में मौजूद बैक्टीरिया और वसन नली में पहुंच जाते हैं। 1999 में ही माइक्रोबायोलॉजी इकोलॉजी में मैदानी परिस्थितियों के तहत किए गए एक परीक्षण की प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार, बायोटेक बीटरूट फसलों के अवशिष्ट से जमीन के बैक्टीरिया में एंटीबायोटिक जीन्स के ट्रांसफर की बात सामने आई थी।

यह माना जाता है कि एग्रोबैक्टीरियम पशुओं को संक्रमित नहीं करते और इनमें पौधों से पशुओ के बीच इंजीनियर्ड जीन का आदान–प्रदान नहीं होता। लेकिन 2001 में पाया गया कि एग्रोबैक्टीरियम ने मानव कैंसर कोशिकाओं में डीएनए के ट्रांसफर में मध्यस्थता की थी। न्यूकैसल यूनिवर्सिटी के शोध के उन नतीजों के बारे में पहले ही बताया जा चुका है कि आरआर सोया के डीएनए के कुछ अंश इंसानी कार्यकर्ताओं की आंतों में पाए गए थे।

खाद्य सुरक्षा को प्रभावित कर सकने वाले बदलाव

व्यापक स्तर पर जीएम फसलें अपनी अनिश्चितता और तनाव बर्दाश्त न कर पाने के कारण खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा हो सकती हैं। इसके कारण मौसमी बदलाव की मौजूदा परिस्थितियों में फसल के

अचानक खराब हो जाने की आशंका रहती है। ऐसे में भूख और कुपोषण को मिटाने की बजाय जीएम फसलें मौजूदा खाद्य सुरक्षा को ही तबाह करने की क्षमता रखती हैं।

अगर जेनेटिक इंजीनियरिंग की मदद से ऐसी फसलों को प्राप्त किया जाता रहा तो खाद्य सुरक्षा पर खतरे के और भी कारण हो सकते हैं। जैसेः

- फसलों में नई–नई बीमारियां और कीटों का प्रकोप।
- मिट्टी की माइक्रोबियल गतिविधियों पर संभावित प्रभाव।
- जीई फसलों के साथ, खासतौर पर खरपतवार रोधी फसलों में यील्ड ड्रैग की घटना।
- भारत जैसे कुछ देशों में, जहां लोगों की खाद्य सुरक्षा उनकी क्रय शक्ति से सीधी जुड़ी है (न सिर्फ समुदाय के बारे में, बल्कि पर्याप्त खाद्य पदार्थों के उत्पादन की देश की क्षमता के बारे में भी), खरपतवार रोधी फसलें गांवों में गरीबों का रोजगार छीनने वाली साबित हो सकती हैं, जिससे उनमें खाद्य असुरक्षा पैदा हो सकती है।
- जीएम फसलों में खाद्य सुरक्षा और पोषण में बदलाव लोगों को खाद्य पदार्थों की उपलब्धता सुनिश्चित करने में भी असर डाल सकती है।

यहां यह समझना होगा कि जीई का सबसे खतरनाक दुष्प्रभाव उससे बहकर आने वाले ट्रांसजेनिक इंड्यूस्ड अनिश्चितता से है। जीनोम के स्तर पर इस तरह का बदलाव विकास क्रम में अभूतपूर्व परिवर्तन पैदा कर सकता है। यह भी पाया गया है कि जीन्स की संख्या और ट्रांसजेनिक डीएनए कैसेट की लंबाई जितनी ज्यादा होगी, अनिश्चितता भी उतनी ही अधिक होगी। यह भी अब साफ हो गया है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग के कारण आण्विक स्तर से समूचे इको सिस्टम तक में बदलाव हो जाता है। ऐसे में जीई इंडस्ट्री द्वारा स्वयं को गैर जीई तकनीक के बराबर बताने का विचार सही नहीं है। यह स्पष्ट है कि जीई तकनीक के कारण होने वाले सभी बदलाव तुरंत नजर नहीं आते। इन्हें लक्ष्य

आधारित प्रयोगों के बाद सामने लाया जा सकता है। हम तो इतना भी नहीं जानते कि अब तक हुए अध्ययन के विविध पक्षों में से कईयों के बारे में कौन से सवाल पूछें। जीई फसलों के लिए वैज्ञानिक और वास्तविक आकलन के काम में सबसे बड़ी रुकावट यह है कि परीक्षण में शामिल किए गए उत्पादों का जेनेटिक सीक्वेंस बायोटेक कंपनियों द्वारा नियमन एजेंसियों को बताए गए सीक्वेंस से अलग हो सकता है। ऐसे में यह जरूरी नहीं है कि जिस उत्पाद का परीक्षण किया जा रहा हो, वही उत्पाद कृषि के कार्य में भी उपयोग में लाया जा रहा हो। यह माना जाता है कि ऐसा प्रवेश कराए गए जीन्स के समय के साथ खुद को पुर्नव्यवस्थित कर लेने के कारण होता है। मिसाल के लिए राउंडअप रेडी सोयाबीन में ब्रुसेल्स की प्रयोगशाला ने यह स्वीकार किया कि परीक्षण के लिए लाए गए उत्पाद का जेनेटिक सीक्वेंस बताए गए उत्पाद से अलग था। इस प्रयोगशाला ने जिस सीक्वेंस का पता लगाया, वह फ्रांस में पाए गए सीक्वेंस से बिल्कुल अलग था। इससे यह बात सामने आती है कि प्रवेश कराया गया जीन अस्थिर होता है और अलग–अलग प्रकार से खुद को बदल सकता है। इससे यह भी पता लगता है कि ये आपस में मिलकर ऐसे नए प्रोटीन बनाते हैं, जिनके बारे में न तो अपेक्षा की गई थी और न ही उनका परीक्षण हुआ था।

जेनेटिक स्तर पर होने वाली इस जटिल परिवर्तन और जीई तकनीक की अस्थिर प्रवृत्ति को पूर्ण रूप से समझना मानव के बस की बात नहीं है। इसके कारण यह कहा जा सकता है कि जीई तकनीक दुनिया के सख्त से सख्त नियामक संस्था और प्रभावशीलता का अध्ययन करने वाली शासन प्रणाली को झांसा दे सकती है। यह इस बात को तर्कसंगत रूप से साबित करता है कि जीन्स की अस्थिरता के कारण सुरक्षा के मामले में अचूक परीक्षण असंभव है।

• ••

7. जीई और दुनियावी हालात

हालांकि इस बात के ज्यादा से ज्यादा प्रमाण मिल रहे हैं कि यह जीई असंगत, अनिश्चित और अपरिवर्तनीय तकनीक है, फिर भी इसे एक विश्वस्तरीय विज्ञान बताकर दुनिया की समस्याओं में से कई का एकमात्र विकल्प भी कहा जा रहा है। कई देशों में कारोबार करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियां इस बात का प्रचार करने में लगीं हैं। अमेरिकी सरकार और विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाएं इन्हें सहयोग कर रहीं हैं। जनसंपर्क के बेहिसाब साधनों की बदौलत जीई ने बड़ी सावधानी से अपनी ऐसी सकारात्मक छवि बनाई है जिसके मुताबिक यह एक अचूक विज्ञान है, इकोलॉजिकल विकल्प है, वैश्विक विज्ञान है और विकास से इसकी तुलना की जा सकती है आदि।

ट्रांसजेनिक्स पर भरोसा करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के कृषि विशषज्ञों का मानना है कि हरित क्रांति के दौरान इसी तरह की धार्मिक भावना की बदौलत उन्हें रासायनिक कृषि को आगे बढ़ाने में मदद मिली थी (यह न भूलें कि रासायनिक कृषि को बढ़ावा देकर कृषि क्षेत्र को दुर्गति के कगार पर लाने वाली कंपनियां भी वही हैं, जो अब जीई तकनीक की पैरोकारी कर रही हैं)।

भारत में कई राजनेता यह पूछते हैं कि दुनिया के बाकी देशों के समान हमें भी जीई फसलों को क्यों नहीं अपनाना चाहिए। वे जानना चाहते हैं, 'जब जीई को अपनाने वाले विभिन्न देशों को इनसे कोई समस्या पेश नहीं आ रही है तो इस पर इतनी चिंता क्यों जताई जा रही है।'

सोचने की जरूरत है कि,

- जीएम फसलों को बाजार में पेश करने के 12 साल बीत जाने के बावजूद अभी तक सिर्फ 14 देशों ने ही इसे व्यापक रूप में

अपनाया है, जबकि दुनिया में करीब 200 से ज्यादा देश हैं। यहां तक कि इन 14 देशों में भी जीई फसलों का रकबा कुल कृषि भूमि का औसतन 3 फीसदी ही है। केवल चार देश ही अपनी कुल कृषि भूमि के 30 प्रतिशत से ज्यादा रकबे में जीई फसलें बोते हैं। ये हैं – अमेरिका, अर्जेंटीना, पराग्वे और उरुग्वे।

- जीएम फसलों का 90 फीसदी क्षेत्रफल उत्तरी और दक्षिण अमेरिका के पांच देशों में फैला है। ये हैं, अमेरिका, कनाडा, अर्जेंटीना, ब्राजील और पैराग्वे।
- अमेरिका दुनियाभर में जीएम फसलों का 50 प्रतिशत उत्पादन करता है, जबकि अमेरिका और अर्जेंटीना मिलकर 70 फीसदी जीएम फसलें पैदा करते हैं।
- यहां भी कॉटन, मक्का/कॉर्न, सोयाबीन और कनोला का ही जीएम फसलों के रूप में उत्पादन किया जाता है। चावल, गेहूं, टमाटर, स्वीट कॉर्न, आलू और पॉपकॉर्न को विश्व बाजार ने अस्वीकार्य बताकर खारिज कर दिया है। उत्तरी अमेरिका के किसान भी जीएम गेहूं को लेकर उत्सुक और उत्साहित नहीं हैं।
- ज्यादातर जीएम फसलें पशु चारे के रूप में उपयोग में लाई जाती हैं, इंसानों के खाने के लिए नहीं। अमेरिका में कॉर्न की आधी उपज पशु चारे के रूप में इस्तेमाल में लाई जाती है, जबकि सोयामील के उपभोग का 98 प्रतिशत जानवरों के उपभोग में लाया जाता है।
- दुनियाभर में उगाई जाने वाली जीएम फसलों में खरपतवार प्रतिरोधक के रूप में केवल एक ही गुण मौजूद है। जिस खरपतवार नाशक के ये प्रतिरोधक क्षमता से लैस हैं, वह मोन्सांतो की राउंडअप प्रजाति है (ग्लाइफोसेट, जिसके नकारात्मक प्रभाव के बारे में कई दस्तावेजी सुबूत उपलब्ध हैं)। इसके अलावा बीटी कॉटन और बीटी कॉर्न के रूप में कीट प्रतिरोधी क्षमता से लैस प्रजाति भी उपलब्ध है, जो समूची जीएम फसलों का 19 फीसदी है।
- दुनियाभर में उगाई जाने वाली जीएम फसलों में 90 फीसदी

मोन्सांतो के गुण वाली हैं। इन सभी मामलों में मोन्सांतो के ही पास उत्पाद की तकनीक का आईपीआर अधिकार भी है। मोन्सांतो को अमेरिका और अन्य देशों में जीएम फसलों के मामले में नियमन और नीतिगत बिंदुओं में प्रमुख भूमिका निभाने वाला माना जाता है (प्रत्यक्ष तौर पर या अमेरिकी सरकार के जरिए)। इसके लिए वह कई कूटनीतिक तरीके भी अपनाता है।

- दुनियाभर में केवल 6 प्रतिशत कृषि क्षेत्र ही जीएम फसलों के दायरे में आते हैं। यह आंकड़ा इस कथित्क्रांतिकारी व आधुनिक तकनीक को बाजार में पेश किए जाने के 15 साल बाद का है।

अमेरिका में : यह देखना दिलचस्प और जरूरी है कि जीएम को लेकर अमेरिका में क्या परिस्थिति है? क्यों वह दुनियाभर में इस तकनीक को बढ़ावा देने के लिए आक्रामक नीति अपनाए हुए है। भारत में भी अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनियां ही अपनी सहायक कंपनियों के मार्फत जीएम फसलों को बढ़ावा दे रही हैं। यूएसएड जैसी द्विपक्षीय विकास एजेंसियां और रॉकफेलर जैसे अमेरिकी एनजीओ भी दक्षिण एशियाई क्षेत्रों में जीएम फसलों को बढ़ावा देने में जुटे हुए हैं। मिसाल के लिए पैन एशियन परियोजना, जिसे एबीएसपी 2 भी कहा जाता है, यूएसएड और अमेरिकी विश्वविद्यालयों की मदद से भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के कृषि विश्वविद्यालयों को बीटी बैंगन जैसे जीएम फसलों को स्वीकार करने के लिए मनाने की कोशिश कर रहे हैं। कृषि क्षेत्र में हुए इंडो–यूएस नॉलेज इनीशिएटिव जैसे नए द्विपक्षीय समझौते के तहत ट्रांसजेनिक्स पर शोध को बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के रिसर्च इंस्टीट्यूट्स की ओर निशाना साधा जा रहा है।

अमेरिका की प्रमुख फसलें कॉटन, गेहूं, सोया और मक्का है। यह जानना और दिलचस्प हो सकता है कि 75 फीसदी कॉटन, 47 फीसदी गेहूं, 40 फीसदी सोया और 19 फीसदी मक्का वैश्विक बाजार को निर्यात किया जाता है। वर्ष 2006 में अमेरिका ने इन उत्पादों का रिकॉर्ड पैमाने पर निर्यात किया था। ऐसे में अगर जीएम फसलों को लेकर कहीं विरोध

हुआ तो अमेरिकी निर्यात पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए अमेरिका की यही कोशिश है कि दुनिया में ज्यादा से ज्यादा देश ट्रांसजेनिक्स को अपनाएं। यहां यह ध्यान में रखना जरूरी है कि अमेरिका में मक्के का आधा उत्पादन पशुओं के लिए चारे के रूप में होता है, जबकि सोया मील उत्पादन का 98 फीसदी चारे के तौर पर इस्तेमाल होता है। दरअसल वहां का बाजार मुख्य रूप से चारे का है, न कि मानव आहार का। दूसरी ओर विकासशील देश अपने यहां जेनेटिक इंजीनियरिंग की मदद से मानव के प्रमुख आहार योग्य उत्पादों, जैसे चावल का उत्पादन बढ़ाने की जरूरत महसूस कर रहे हैं। हमारे ज्यादातर राजनेता इन तथ्यों से अवगत नहीं हैं।

अमेरिकी बायोटेक इतिहास का एक और मजेदार तथ्य यह भी है कि वहां 14 विभिन्न प्रकार की फसलों पर 70 अलग–अलग बायोटेक इवेंट्स के बाद व्यावसायिक कृषि के लिए 10 गुणों को स्वीकार किया गया है। हालांकि सोयाबीन, मक्का, कॉटन और कैनोला ही अमेरिका में बहुतायत से पैदा की जाने वाली जीएम फसलें हैं, जिनमें सिर्फ दो ही गुण मौजूद हैं। पहली दो फसलें तो पशु चारे के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं, जबकि कॉटन एक गैर भोज्य फाइबर वाली फसल है।

अमेरिका का नियामक तंत्र भी काफी हद तक संदेहास्पद है। इसे इसकी लापरवाह क्रियाकलापों के लिए जाना जाता है। इसका ढांचा कार्पोरेट समर्थक है, इसमें वैज्ञानिकता की कमी है और सबसे बड़ी बात, जीई फसलों के सुरक्षा आकलन के दौरान इसमें सख्ती नहीं बरती जाती है। कंपनियों की ओर से कई नियामक प्रक्रियाएं स्वच्छंद रूप से इस्तेमाल की जाती हैं। यहां ऐसी कोई स्वतंत्र शोध की व्यवस्था भी नहीं है, जो इस तंत्र को फैसले लेने में अपनी राय दे सके। इस बात के भी प्रमाण उपलब्ध है कि सावधानी बरतने की हिदायतों को नकार दिया जाता है। यहां अमेरिकी कृषि के सामाजिक–आर्थिक पहलू को भी देखना जरूरी है, ताकि उस अंतर के बारे में पता चल सके, जो भारत और वहां की परिस्थितियों में मौजूद है। इस समय अमेरिका की सिर्फ दो फीसदी आबादी (करीब 60 लाख लोग) ही 21 लाख फार्म हाउसों में काम करती

है। वहां एक छोटे से किसान के पास भी खेती की सैंकड़ों एकड़ जमीन है। दूसरी ओर भारत में करीब छह करोड़ लोग खेती पर पूरी तरह से निर्भर हैं। उनकी आजीविका का एकमात्र साधन यही है। ऐसे ज्यादातर लोगों के पास एक एकड़ से भी कम जमीन है। अमेरिका में ऐसी कृषि तकनीकों की जरूरत नहीं है, जो मानवीय श्रम पर निर्भर हो (यहां यह कहने की जरूरत नहीं है कि ऐसी तकनीक आवश्यक भी है)। ऐसे में भारत में यहां की सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों को जाने बगैर जीएम जैसी तकनीकों का आयात एक मूर्खतापूर्ण कदम होगा। जीई तकनीक के बावजूद अमेरिका में अधिकांश खेती सरकार से मिलने वाली भारी–भरकम सहायता की बदौलत की जाती है। जब अमेरिकी हितों से मेल खाने वाले व्यापार कानूनों के सुविधानुसार पारिभाषित करने और पुनः आदेश देने की बात आती है तो डबलूटीओ और अन्य व्यापार कानूनों के कोई मायने नहीं रह जाते। भारत में ऐसा नहीं है। यहां के किसान पहले ही भीषण परिस्थितियों से जूझ रहे हैं। ऐसे में उन्हें ऐसी किसी तकनीक की कोई जरूरत नहीं है, जो उनके जोखिम को और बढ़ा दे।

मोन्सांतो : एक प्रमुख खिलाड़ी– भारत और दुनियाभर में जीएम फसलों की बात करते हुए अगर मोन्सांतो के बारे में कुछ तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया तो बात अधूरी ही रहेगी। जीएम फसलों को दुनियाभर में बढ़ावा देने के मामले में अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी मोन्सांतो ने प्रमुख खिलाड़ी की भूमिका अदा की है। यह दुनिया की सबसे बड़ी बीज निर्माता कंपनी है। विश्व की ज्यादातर बीज निर्माता कंपनियां इसके हाथों के नीचे हैं। मोन्सांतो के पास 600 तकनीकों, गुणों, जीन्स, बीजों और पौधों के पेटेंट हैं। ये पेटेंट इन चीजों का औरों द्वारा उपयोग किए जाने से रोकते हैं (फिर भले ही यह उसकी जिंदगी और मौत का सवाल क्यों न हो।)। इन पेटेंट्स और अन्य वैधानिक प्रावधानों के समर्थन के सहारे कंपनी उत्तरी अमेरिका में बीज खरीदने वाले प्रत्येक किसान से एक तकनीकी समझौता करती है। कंपनी में एक गुप्तचर विभाग भी है, जहां के करीब 75 कर्मचारी किसान की गतिविधियों पर नजर रखते हैं, ताकि वह तकनीकी समझौते की शर्तों का उल्लंघन न करे। ऐसे उल्लंघनों

के लिए अब तक कई किसानों पर मुकदमा चल चुका है और उन्हें जेल भेजा जा चुका है। मोन्सांतो ने तकनीकी समझौते का उल्लंघन करने वाले किसानों से दसियों हजार डॉलर भी वसूले हैं। इस बात के प्रमाण भी उपलब्ध हैं कि मोन्सांतो बाजार में कुछ इसतरीके से जोड़–तोड़ करता है कि कंपनी और उसकी सहायक इकाईयों के सर्वोत्तम क्वालिटी के बीज जीएम प्रजाति के नाम से बिकें और गैर जीएम बीज को धकेलकर बाजार से बाहर कर दिया जाए। इंडोनेशिया में मोन्सांतो के बारे में कहा जाता है कि उसने अपने बीटी कॉटन को मंजूरी दिलाने के लिए ढेरों नियामक अधिकारियों को रिश्वत दी। इन रिश्वतों के कारण कंपनी को बाद में अमेरिका सरकार को जुर्माने के तौर पर 15 लाख डॉलर का भुगतान भी करना पड़ा था।

इस मामले में कनाडा के किसान पर्सी स्किमिजर का उदाहरण जाना–माना है, जिसने अपने खेत में कनोला के बीज बोए थे, लेकिन बाद में वे मोन्सांतो के जीएम बीज निकले। मोन्सांतो इस मामले को कनाडा के सुप्रीम कोर्ट तक ले गया, जहां आश्चर्यजनक रूप से सुप्रीम कोर्ट ने कंपनी की इस दलील पर सहमति जताई कि गैर जीएम बीज से हुआ प्रदूषण मोन्सांतो के पेटेंट का उल्लंघन है (कोर्ट ने जीएम बीजों से मुक्त रहने के किसान के अधिकार को नहीं देखा और यह भी नहीं देखा कि मामले में उसके अधिकार का हनन हो रहा है)।

मोन्सांतो के बारे में यह भी मशहूर है कि वह जीएम उत्पादों की बायोसेफ्टी से जुड़े नियामक अधिकरणों द्वारा और सार्वजनिक रूप से किए जाने वाले परीक्षणों के आंकड़े दबा देता है, जैसा कि बीटी मक्के के मामले में हुआ है। इस उत्पाद की सुरक्षा को लेकर कंपनी द्वारा कराए गए परीक्षणों में ही आपत्तिजनक सुबूत प्राप्त हुए थे।

भारत में मोन्सांतो के रोकथाममूलक व्यापार को आंध्रप्रदेश सरकार ने चुनौती दी थी, जिसमें बीटी कॉटन कंपनियों द्वारा अपने बीजों के अत्यधिक दाम लगाए जाने की बात कही गई थी, क्योंकि लोगों को मोन्सांतो कंपनी को रॉयल्टी के बतौर बड़ी रकम देनी पड़ रही थी।

मोन्सांतो और इसकी सहायक कंपनियां उन किसानों को पर्याप्त मुआवजा भी देने में विफल रही है, जिनकी बीटी कॉटन की फसल बुरी

तरह से बरबाद हो गई थी। वह भी तक, जबकि सरकार ने खुद इस बात के आदेश दिए थे, साथ ही कंपनी का सरकार के साथ इस बात का समझौता भी था कि फसल नाकाम होने की स्थिति में वह किसानों को मुआवजा देगी। ऐसे कई तरीकों से कंपनी ने किसानों के प्रति अपने गैर जिम्मेदाराना रवैए का परिचय दिया है। यही कारण है कि भारत में जीएम कानूनों को लागू करने वाले मोन्सांतो के बीजों के बायोसेफ्टी और अन्य परिस्थितिजन्य आधारों पर ध्यान रखते हैं और इनसे जुड़े हुए आंकड़ों को फैसला लेते समय ध्यान में रखा जाता है।

प्रचार किया जा रहा है कि जीएम तकनीक का सभी जगह व्यापक उपयोग हो रहा है, पर असयितल कुछ और है। सच्चाई तो यह है कि यूरोप और अन्य देशों में उपभोक्ता खाद्य पदार्थों के मामले में जीई तकनीक को मजबूती से लगातार नकारा जा रहा है। इतना ही नहीं, बाजार पर भी गैर जीई फसलों को लाने का दबाव बनाया जा रहा है। कई देश जीई फसलों पर प्रतिबंध लगा रहे हैं। सामाजिक कार्यकर्ता जीई फसलों की बायोसेफ्टी को कोर्ट में लगातार चुनौती दे रहे हैं और जीई पर पाबंदी लगाने में सफल भी हो रहे हैं। इस बात का प्रमाण विभिन्न देशों द्वारा जीई फसलों पर लगाए जा रहे कानूनी प्रतिबंधों या कोर्ट से मिल रहे प्रतिबंधात्मक आदेशों से मिल जाता है। भले ही इस दिशा में स्थूल रूप से कोई बदलाव नजर न आ रहा हो, लेकिन सच तो यही है कि समुदाय खुद को तेजी से जीएम मुक्त घोषित कर रहे हैं और अन्यत्र कहीं भी जीई तकनीक के उपयोग को रोकने की कसमें भी खा रहे हैं।

भारत में भी ज्यादा से ज्यादा इलाके खुद को जीएम मुक्त घोषित कर रहे हैं। उत्तरांचल सरकार ने स्वयं को जीई मुक्त घोषित कर दिया है। केरल और उड़ीसा सरकार ने भी इस बात की घोषणा की है कि वे अपने राज्य में जीएम फसलों का परीक्षण नहीं होने देंगे।

उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, उड़ीसा और अन्य राज्य भी अपने संवैधानिक प्राधिकरणों के जरिए स्वयं को जीएम मुक्त घोषित करने की कोशिश में हैं। ऐसे में जीई फसलों को उगाने के बारे में निर्णय लेना, जैसा कि भारत सरकार करना चाहती है, एक मूर्खतापूर्ण कदम होगा।

• • •

8. भारत में जीई

भारत जैसे देश मेंकृषि क्षेत्र में कोई भी नई तकनीक लागू करने से पहले उसका विस्तार से आकलन जरूरी है। यहां आज भी बड़ी तादाद में लोग आजीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर हैं।कृषि तकनीकें न सिर्फ मानव, बल्कि अन्य जीवों को भी प्रभावित करती हैं। इसके अलावा ये हमारे प्राकृतिक संसाधनों, जैसे मिट्टी, हवा और पानी की बनावट को भी बदल सकती हैं। भारत में इन तकनीकों का व्यापक असर पड़ सकता है, क्योंकि देश में एक बहुत बड़ा क्षेत्र कृषि के अंतर्गत आता है। धीरे–धीरे यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी को अपने प्रभाव में ले सकती है। ऐसे में किसी भी कृषि तकनीक को लागू करने से पहले उसके असर के बारे में व्यापक स्तर पर अनुसंधान करने की जरूरत है। साथ ही इसके राजनीतिक–आर्थिक पक्ष को भी देखना होगा। खासकर यह कि कौन, क्यों और कैसे इसे बढ़ावा दे रहा है। ट्रांसजेनिक्स के मामले में अभी ऐसा ही हो रहा है। इसे एक छोटे से उदाहरण से समझा जा सकता है कि कृषि क्षेत्र में उपयोग में लाए जाने वाले कीटनाशकों के वास में चले जाने से लाखों किसान और कृषि मजदूर हर साल प्रभावित होते हैं। ऐसे में यह तकनीक उनके जीने के अधिकार का उल्लंघन कर रही है। जब कीटनाशकों को पहली बार बाजार में पेश किया गया था, तब उनके बारे में दावा किया गया था कि वे मानव के लिए नुकसानदेह नहीं हैं जो सच्चाई से परे है।

जीई कई अन्य कारणों से भी हानिकारक है– यह एक ऐसी तकनीक है, जो स्वयं प्रजनन कर सकने में सक्षम जीवधारियों से संबंधित होने के कारण अपरिवर्तनीय है, साथ ही यह दूसरे जीवों में भी फैल सकती है। यह किसी मृत अणु से संबंधित तकनीक नहीं है, जिसका समय के साथ क्षय हो जाएगा। यह जानबूझकर किया जाने वाला शाश्वत

प्रदूषण है, जिसे एक बार पर्यावरण में पहुंच जाने के बाद दोबारा वापस नहीं किया जा सकता है। इसका प्रभाव इस कदर तेज है कि विश्व के इको सिस्टम को इसके अनुसार स्वयं को ढालने का समय ही नहीं मिल पाता है। ऐसे में हम उस जीई तकनीक की बात कर रहे हैं, जो आण्विक स्तर पर अपने प्रोटीन नेटवर्क से और अपने इवॅाल्यूशनरी नेटवर्क से जीवजगत में अपरीवर्तनीय बदलाव ला सकती है।

हमने अपने प्राकृतिक संसाधनों में काफी धन खर्च कर और देश के कई सूखाग्रस्त इलाकों को हरा–भरा करने के बाद राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा तंत्र का विकास किया है, इसलिए हम जेनेटिक इंजीनियरिंग को अपनाकर इस तंत्र को बरबाद नहीं कर सकते हैं। देश के ज्यादातर किसान फसल के लिए मॉनसून पर ही निर्भर हैं, साथ ही उन पर मौसमी बदलावों की भारी मार भी पड़ती है। ऐसे में जीई तकनीक को अपनाने का मतलब होगा अनिश्चित परिणामों का जोखिम उठाना, फसल की बरबादी, मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों को बर्दाश्त न कर पाने की अक्षमता, खेती की लागत में बढ़ोतरी आदि। इससे किसानों की आजीविका पर अतिरिक्त जोखिम हो सकता है। किसी तरह के सामाजिक सहायता तंत्र का न होना इस जोखिम को और भी बढ़ा सकता है (भारतीय किसानों के लिए विकसित देशों के समान न तो कोई सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध है और न ही उनकी फसल का सामाजिक बीमा ही किया जाता है)।

इस बात का भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि ट्रांसजेनिक तकनीक सुरक्षित हैं, पर इसके प्रमाण जरूर हैं कि ये खेती को गंभीर नुकसान पहुंचा सकते हैं, इसलिए सावधानीमूलक कदम उठाए जाने चाहिए।

अन्य सामाजिक-राजनीतिक अर्थ : जीई से पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के अलावा भारत के संदर्भ में इसके और भी कई सामाजिक–आर्थिक अर्थ हैं। खासतौर पर उस कृषक समुदाय के लिए जो इस ट्रांसजेनिक कृषि के दायरे में आएगा।

जीई फसलें किसानों की कार्यकुशलता को घटा देंगी : अब इस बात के भी प्रमाण हैं कि जीई जैसी तकनीकों से किसानों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता खत्म हो जाएगी और इको सिस्टम के प्रति उनका ज्ञान

भी समाप्त हो जाएगा। बीज का चुनाव करते वक्त धन/बाजार की ताकतों से मुक्त होकर स्थानीय पर्यावरण और किसानों के पास उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखना होगा। यहां के किसानों ने सदियों के अनुभव से कई तकनीकें ढूंढ़ निकाली हैं। किसानों ने अपनी जरूरत और पसंद के मुताबिक जिस तरह की विविधता का विकास किया है, वह पश्चिमी जगत के कृषि के मॉडलों में बिरले ही नजर आता है। यही नयापन अब बाजार प्रेरित तकनीक की ओर झुक जाएगा।

जीई फसलें किसानों का रोजगार छीन लेंगी : दुनियाभर में इस्तेमाल की जा रहीं ज्यादातर जीई फसलें खरपतवाररोधी हैं। भारत में फसल के आसपास से घास–फूस हटाने का काम एक अहम कृषि गतिविधि है, जो पूरे देश में लाखों लोगों, खासकर महिलाओं को रोजगार देता है। अगर इसकी जगह खरपतवार रोधी फसलों का इस्तेमाल शुरू हो गया तो इन महिला मजदूरों को रोजगार से हाथ धोना पड़ेगा। इसका उनकी आजीविका और स्थानीय अर्थव्यवस्था पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। साथ ही रासायनिक प्रदूषण जैसी अन्य समस्याएं भी पैदा होंगी।

जीई फसलें किसानों की आत्मनिर्भरता को घटा देंगी : जीई जैसी तकनीकें किसानों का मुनाफा कमाने वाले बाजार पर निर्भर बना सकती हैं। एक ऐसे बाजार पर जिसका कोई मानवीय सरोकार नहीं है। जिसके कर्ताधर्ता सिर्फ इसके फैलाव और उसे कायम रखने के बारे में सोचते हैं। ऐसे में खर्च बेहिसाब बढ़ेगा और किसानों के हाथ कुछ भी नहीं आएगा। यह तकनीक ही खर्चीला है। न तो उपज पर और न ही इससे मिलने वाली राशि पर कोई गारंटी है। भारत में सीमांत और लघु किसानों की तादाद ज्यादा है, जिन्हें संस्थागत ऋण या मंडी से खरीदी के रूप में बहुत थोड़ी सी ही सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध है। चूंकि इस तकनीक की आर्थिक उपयोगिता ही सवालों के घेरे में है, कंपनियों द्वारा दिए जाने वाले विकल्प किसानों की वास्तविक जरूरत पर आधारित हो ही नहीं सकते ।

कृषि में इकोलॉजिकल विकल्पों पर खतरा हैं : जीई उन किसानों के लिए स्पष्ट खतरा है, जो जैविक खेती को अपनाना चाहते हैं (प्रमाण्फ्रित

या गैर प्रमाणिकृत रूप में), या फिर वे जो परंपरागत बीजों का इस्तेमाल करना चाहते हैं। अन्य किसानों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले जीई बीजों से दूसरों को खतरा अनिवार्य है, चाहे वह जैविक खतरा हो या फिर अन्य भौतिकीय संदर्भों में।

अनसुलझे नीतिपरक और नैतिक सवाल भी हैं : जीई तकनीक कई नीतिपरक और नैतिक सवाल भी खड़े करती हैं। मिसाल के लिए जीवधारियों में जेनेटिक ट्रांसफर को स्वीकार्य बनाने के लिए प्रकृति के कामकाज में हस्तक्षेप करना, खासकर तब जबकि इसके प्रभाव अनजाने हैं। क्या विज्ञान और तकनीकी विकास के दम पर मानव को प्रकृति पर नियंत्रण की कोशिश करनी चाहिए? या फिर उसे कोई सहायक कदम उठाना चाहिए? क्या जीई जीवधारियों के भीतर और इंटरट्रांसजनरेशनल समानता के सिद्धांत का पहले और अब तक लिए गए सभी निर्णयों के जरिए उल्लंघन नहीं करता है? और वह भी मानव कल्याण के नाम पर? पशुओं के जीन्स को पौधों में प्रत्यारोपित करना (मिसाल के लिए मछली के जीन्स को टमाटर में) भी एक तरह से सामाजिक–सांस्कृतिक और शाकाहारी बने रहने जैसी व्यक्तिगत पसंद को भ्रमित करने का प्रयास है। यह किसानों और उपभोक्ताओं के पास बहुत थोड़े विकल्प छोड़ता है। क्या यह नीतिसंगत है?

लोकतांत्रिक मूल्यों का उल्लंघन है : यह अभी तक स्पष्ट नहीं है कि इस बात का फैसला कब, कहां और क्यों लिया गया कि ट्रांसजेनिक तकनीक भारतीय कृषि के लिए जरूरी है। ऐसे नीतिगत निर्णयों से प्रभावित होने वाले किसानों और उपभोक्ताओं से सलाह लेने के लिए क्या प्रक्रिया अपनाई गई थी? क्या अन्य सुरक्षित और अपनाने योग्य विकल्पों से तुलना की गई थी?

व्यापार सुरक्षा के लिए भी खतरा : दुनियाभर में ज्यादातर देशों ने जीई फसलों को सैद्धांतिक रूप से या तो नकार दिया है या फिर उन्हें सावधानीपूर्वक अपनाने पर जोर दिया है। जेनेटिक इंजीनियरिंग को लेकर उपभोक्ताओं की प्रतिक्रिया भी नकारात्मक रही है। यही रवैया जीएमओ, जीई के तत्वों से बने व विकसित किए गए उत्पादों और प्रक्रियाओं के

लिए भी है। यह सभी हमारे व्यापार सुरक्षा पर गंभीर खतरा पैदा करती हैं। ऐतिहासिक रूप से कृषि भारत के लिए विदेशी मुद्रा कमाने वाला क्षेत्र रहा है। मौजूदा आर्थिक उदारीकरण के दौर में भी भारत के अंतरराष्ट्रीय व्यापार में कृषि का प्रमुख योगदान है। जीई अपना कर अपने व्यापार के अवसरों को खत्म नहीं किया जा सकता है।

तरीका अविश्वसनीय और किसान विरोधी है : भारत में जीई का विनियमन अवैज्ञानिक है, इसमें विस्तृत आकलन का अभाव है और यह किसान/उपभोक्ता समर्थक होने की बजाय उद्योगों की समर्थक है। भारत में विनियामक नियमों के अमल का इस कदर बुरा हाल है कि कंपनियों द्वारा किसानों से उनकी सहमति लिए बिना उन्हीं के खेतों में जीई फसलों के फील्ड ट्रायल करने के भी कई उदाहरण सामने आए हैं। यहां विनियमन कानूनों को अमेरिका जैसे देशों से आयात किया गया है, जिन पर परोक्ष और अपरोक्ष रूप से मोन्सांतो जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का हुक्म चलता है। यही वे कंपनियां है, जो विभिन्न बायोसेफ्टी परीक्षणों के लिए प्रोटोकॉल्स प्रस्तावित करती हैं। विनियामक संस्थाएं इन प्रोटोकॉल्स को सिर्फ स्वीकार करती हैं, भले ही वे इन शोध कार्यों की गाइडलाइन से अवगत न हों। कई कारणों से, जिनमें धनाभाव भी एक वजह है, भारत में इस तरह के स्वतंत्र शोधकार्य नहीं हो पाते हैं। ज्यादातर शोध कार्य जीएम फसलों की विकासकर्ता एजेंसियों द्वारा ही किए जाते हैं, क्योंकि वही इनके लिए पैसा लगाती हैं। ऐसे में वे बमुश्किल उन आंकड़ों के साथ सामने आती हैं, जिनमें उनकी तकनीक में समस्याएं सामने आती हों। वे तो उन शोध कार्यों को डिजाइन करती हैं, जो या तो दीर्घावधि के हों या फिर जिनमें परिणाम अनिश्चित हों।

जीई और आईपीआर एक साथ चलते हैं : हमारी खाद्य श्रृंखला में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का नियंत्रण तब पूरा हो जाएगा, जब इस तकनीक को बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) के रूप में विशिष्ट मार्केटिंग राइट्स के साथ जोड़कर पेश किया जाएगा। भारत में जीई ने शायद ही ऐसा कोई शोध कार्य किया होगा, जिसे आईपीआर से जोड़ा न गया हो। असल में यह समुदाय और प्रकृति पर समान रूप से नियंत्रण की

कार्रवाई है। हरित क्रांति के दौरान ऐसी स्थिति नहीं थी, जबकि तब तकनीक का खुला स्रोत उपलब्ध था। इस तरह से दुनिया की पांच प्रमुख बीज उत्पादक कंपनियां जीन्स और प्रक्रियागत तकनीक के मामले में पूरे विश्व पर नियंत्रण करने की अल्पाधिकार मूलक परिस्थितियां उत्पन्न कर रही हैं। अब जबकि बहुराष्ट्रीय कंपनियां गुणों की विक्रेता के तौर पर उभर रहीं हैं, बीज उद्योग के भीतर एक ऐसा पदक्रम उभर रहा है, जिसमें भारतीय कंपनियां सिर्फ बीज विक्रेता बनकर रह गई हैं और उन्हें मजबूरन विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से वे सारे लाइसेंस समझौते करने पड़ रहे हैं, जिसमें मोन्सांतों जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को रॉयल्टी के भुगतान का समझौता शामिल है।

अन्य फसलों के साथ नहीं रह सकतीं : कहा जा सकता है कि जीएम और गैर जीएम फसलों को साथ–साथ उगाने की अनुमति दी जानी चाहिए और इस बात का फैसला करने का अधिकार फसल उत्पादक किसान पर ही छोड़ देना चाहिए कि वह क्या चाहता है। एक तो भारत में कृषि भूमि के वितरण और किसानों के अधिकार में जमीन की मात्रा को देखते हुए यह असंभव है। दूसरे, जहां जीएम फसलों को बोने की अनुमति दी गई हो, वहां गैर जीएम फसलों को बोना भौतिक व जेनेटिक स्तर पर असंभव है। दोनों फसलों के बीच पृथक्करण करने के लिए उनके बीच दूरी कायम रखने और फसल को बेचने/प्रोसेस करने/भंडारण करने/वितरण आदि के लिए भी कई उपाय करने होंगे। भारत में कृषि क्षेत्र में ढांचागत सुविधाओं की कमी और किसानों के पास जमीन की कमी को देखते हुए ऐसा हो पाना असंभव है। वास्तव में किसानों के पास इसका कोई विकल्प ही नहीं है कि वे सभी जीएम फसलों के उत्पादक किसान बनकर रह जाएं।

इस पर भारत द्वारा डब्लूटीओ में किया गया वह बाध्यकारी समझौता भी जुड़ जाता है, जिसके तहत वैश्विक व्यापार कानून को घरेलू विनियमन कानूनों/तंत्र के मुकाबले प्राथमिकता दी गई है। अमेरिका जैसे कुछ देश अन्य देशों में खाद्य सुरक्षा के घरेलू कानूनों पर डब्लूटीओ कानूनों के आधार पर सवाल खड़े करते हुए जरा भी नहीं शर्माते हैं। भारत को

भी जीएम के संबंध में पारित किए गए कानूनों के लिए ऐसे सवालों का सामना करना पड़ा है। दूसरी ओर अमेरिका जैसे देशों में किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी के बावजूद वहां जीएम फसलों को लेकर लोगों का विरोध देखने को मिल रहा है । वह भी तब, जबकि इस तकनीक को वहां कार्यकुंशल और अचूक तकनीक बताकर प्रचारित किया जा रहा है। ऐसे में भारत में भी इस तकनीक को अपनाने का कोई कारण नजर नहीं आता ।

जीई तकनीक का विरोध करने वाले सिविल सोसायटी समूह यह जानते हैं कि भारत ही दक्षिण एशिया और अन्य विकासशील देशों में वह युद्धभूमि है, जहां जीई फसलों के समर्थन या इसके खिलाफ लिया गया फैसला उनके निर्णय पर भी असर करेगा। भारतीय बाजार के आकार को देखते हुए भी जीई फसलों के भविष्य के लिए भारत को ही प्रमुख निर्धारक माना जा रहा है। इन सभी कारणों से सभी मुख्यकृषक संगठन और भारत का सीएसओ देश में जीई फसलों के बारे में नकारात्मक रवैया अपना चुके हैं।

अन्य प्रतिबंधात्मक तकनीकें : बहुराष्ट्रीय बीज निर्माता कंपनियों ने बीज और खाद्य उद्योग पर अपनी पकड़ बनाने के लिए कंट्रोल जीन एक्सप्रेशन नामक एक तकनीक ईजाद की है, जिसके तहत बीज तभी अंकुरित होता है, जब उसे एक खास रसायन से उपचारित किया जाए। ऐसा न करने पर बीज बांझ ही बना रहता है। यह तकनीक टर्मिनेटर तकनीक के नाम से जाना जाता है। तीसरी दुनिया के किसानों और किसान आंदोलनों द्वारा किए गए तगड़े विरोध के कारण बीज उत्पादक कंपनियों ने इस तकनीक को निलंबित रखा है। भारत सरकार ने भी इस तकनीक पर पाबंदी लगाते हुए सीड्स बिल एंड प्रोटेक्शन ऑफ प्लांट वैराइटीज एंड फार्मर्स राइट्स (पीपीवीएफआर) कानून पारित किया है (आईपीआर से संबंधित कानून) जिसमें इस प्रतिबंध की बात कही गई है। टर्मिनेटर बीज बनाने के लिए जीन को एक विषाणु का निर्माण करना पड़ता है, जो बाद में बीज के विकास क्रम में उसे खत्म कर देता है। ऐसा जीन से एक प्रमोटर को हासिल करने के लिए किया जाता है, जो कि अकसर बीज के विकास

क्रम में बाद में सक्रिय होता है। टॉक्सिक प्रोटीन के लिए कोडिंग क्रम में इस प्रमोटर को फ्यूज कर दिया जाता है, जिससे बीज के विकास के क्रम में भ्रूण खत्म हो जाता है।

टर्मिनेटर ही क्यों?

टर्मिनेटर जीन्स से किसान को कृषिजन्य परिस्थिति का कोई लाभ नहीं मिलता है। इसका फायदा केवल बहुराष्ट्रीय कंपनियों को ही मिलता है, क्योंकि इस तकनीक में किसानों को बार–बार कंपनी से बीज खरीदना पड़ता है। सीजन–दर–सीजन किसानों को कंपनियों से बीज लेना होता है। असल में टर्मिनेटर इस बात का उदाहरण है कि कंपनियां किस तरह से किसी पौधे या प्राणी में जेनेटिक बदलाव कर उस तकनीक को बेचते समय उसे सक्रिय या निष्क्रिय कर देती हैं। इसे एक मूल्य सवंर्द्धित ट्रैक्टर खरीदने जैसा मामला भी माना जा सकता है। यही कारण है कि इन जीन्स को 'ट्रैक्टर जीन्स' भी कहा जाता है।

जीन्स निर्माता बहुराष्ट्रीय कंपनियां इन जेनेटिक परिवर्तनों को अपने अधिकार के रसायनों से जोड़ना चाहती हैं, ताकि उपयोग के मामले में दोनों एक–दूसरे पर निर्भर रहें और एक के बगैर दूसरे का काम न चल सके। अब तो टर्मिनेटर जैसी कई और तकनीकें भी हैं, जो जीन के एक्सप्रेशन को कई चरणों में नियंत्रित करती हैं। इन्हें जेनेटिक यूज रिस्ट्रिक्शन तकनीक (जीयूआरटी) कहा जाता है। ऐसे में भारतीय कृषि में जीई तकनीक के खिलाफ विरोध टर्मिनेटर और जीयूआरटी तकनीक के खिलाफ विरोध जताने के बराबर है।

भारतीय कृषिक्षेत्र में जीई का नियमन

भारत में कृषि क्षेत्र में जीई का नियमन मुख्य रूप से केंद्रीय वन व पर्यावरण मंत्रालय करता है। यह 1986 के पर्यावरण संरक्षण कानून के तहत 1989 में बने नियमों का पालन करता है। कई देशों में जीएमओ पर नियंत्रण के लिए विशेष रूप से जीन तकनीक कानून बनाए गए हैं। इन नियमों के आधार पर नियमन का मतलब है कि नियामक संस्थाएं गजट

अधिसूचना के आधार पर ही अपनी सुविधानुसार नियमों को बदल सकती हैं, या फिर उनकी बैठकों के विवरण के आधार पर भी उन्हें बदला जा सकता है।

ईपीए से संबंधित कानून दिसंबर 1989 में पेश किया गया था। इसका मकसद जीन तकनीक और माइक्रोआर्गेनिज्म के उपयोग से पर्यावरण, प्रकृति और मानव स्वास्थ्य को पहुंचने वाले नुकसान को रोकना था।

इसके तहत जेनेटिक तकनीक को इस तरह से पारिभाषित किया गया है—एक ऐसी तकनीक, जिसके तहत विरासत में प्राप्त सामग्री को जीवधारी या कोशिका से बाहर प्राप्त कर उसे किसी विशेष जीवधारी या कोशिका में प्रविष्ट कराया जाता है। ऐसी प्रक्रिया सामान्यतः उस जीवधारी या कोशिका में प्राकृतिक रूप से नहीं होती है। इसका अर्थ किसी कोशिका में से एक कोशिका को प्राप्त कर उसे किसी अन्य कोशिका में डालकर जेनेटिक सामग्री के एक नए संयोजन को तैयार करना भी है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक रूप से (सेल्फ क्लोनिंग) और जीवधारी में बदलाव कर या फिर उनके किसी अंग को हटाकर/खत्म कर उसमें विरासत में मिले जीन्स को प्रविष्ट कराने से संबंधित है। इन नियमों के तहत केंद्रीय वन व पर्यावरण मंत्रालय के अधीन जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी (जीईएसी) का गठन किया गया है। यह कमेटी खतरनाक सूक्ष्मजीवियों के व्यापक इस्तेमाल और उन्हें शोध के लिए पुर्नव्यवस्थित करने व उनका औद्योगिक उत्पादन करने को पर्यावरणीय दृष्टि से सहमति प्रदान करती है। जेनेटिक इंजीनियर्ड ऑर्गेनिज्म सामग्री और उत्पादों को पर्यावरण में जारी करने के प्रस्ताव को सहमति देने का काम भी यही कमेटी करती है। इसमें प्रायोगिक फील्ड ट्रायल भी शामिल है। इसके नियम 7 (1) में साफ कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति खतरनाक सूक्ष्मजीवियों अथवा जेनेटिकली इंजीनियर्ड आर्गेनिज्म/पदार्थों का आयात, निर्यात, परिवहन, उत्पादन, उपक्रम स्थापित करने, उपयोग या इनकी बिक्री करने का काम तब तक नहीं कर सकता, जब तक कि कमेटी इसकी स्वीकृति नहीं दे देती है। 1989 में बने नियमों के खंड आठ में कहा गया है कि जेनेटिकली इंजीनियर्ड आर्गेनिज्म्स या कोशिका

या सूक्ष्मजीवियों का उत्पादन जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी की सहमति के बगैर नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही बगैर अनुमति के इन्हें पर्यावरण में छोड़ा भी नहीं जा सकता है। इसमें जीएम तकनीक के आयात की अनुमति देने या न देने का अधिकार भी शामिल है। 1989 के नियमों के तहत भारतीय कृषि क्षेत्र में जीई तकनीक के नियमन के काम में जीईएसी की मदद के लिए अन्य संस्थाओं की भी स्थापना की गई है। इन सभी संस्थाओं, जिनमें सूक्ष्मजीवियों और जेनेटिकली इंजीनियर्ड आर्गेनिजम्स पर शोध करने वाली एजेंसी भी शामिल है, के लिए एक इंस्टीट्यूशनल बायोसेफ्टी कमेटी (आईबीएससी) का गठन अनिवार्य कर दिया गया है। इस कमेटी में केंद्रीय विज्ञान व तकनीकी मंत्रालय के अधीन बायोटेक्नोलॉजी विभाग के प्रतिनिधि शामिल रहते हैं।

बायोटेक्नोलॉजी विभाग के अधीन जेनेटिक मैनिप्यूलेशन पर एक रिव्यू कमेटी स्थापित की गई है, जो वर्तमान में जारी शोध परियोजनाओं और जीई से जुड़ी गतिविधियों में सुरक्षात्मक पहलू पर निगाह रखती है। इस कमेटी द्वारा वर्तमान में जारी उन सभी परियोजनाओं, जो अधिक जोखिम के वर्ग में आते हैं और नियंत्रित फील्ड रिसर्च की भी समीक्षा की जाती है, ताकि दिए गए मार्ग–निर्देशों के अनुसार समुचित सावधानियां और नियंत्रक परिस्थितियों का पालन हो सके। हालांकि नियमानुसार, कमेटी को समीक्षा करने वाले संगठन का दर्जा दिया गया है, लेकिन फील्ड ट्रायल स्तर के सभी शोध कार्यों की अनुमति इसी कमेटी द्वारा दी जाती है।

बायोटेक्नोलॉजी विभाग में एक सलाहकार समिति भी है, जिसे रिकॉम्बिनेंट डीएनए एडवाइजरी कमेटी (आरडीएसी) कहा जाता है। भारत में कृत्रिम रूप से बनाए गए डीएनए पर शोध, और समय–समय पर उपयोग के बारे में सुरक्षा प्रावधानों को यही कमेटी निर्धारित करती है। उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर यह अभी साफ नहीं है कि यह कमेटी नियमित रूप से बैठक कर अपनी गतिविधियों को अंजाम देती है। वैसे 1989 के नियमों में बायोटेक्नोलॉजी विभाग के भीतर ही अलग से निगरानी

व आकलन कमेटी (एमईसी) के नाम से एक अलग समिति बनाने की भी बात कही गई है, ताकि खेतों में चलाए जाने वाले परीक्षणों पर निगाह रखी जा सके और जीई फसलों की स्थिति का आकलन किया जा सके। वैज्ञानिक तथ्य जुटाने के लिए कमेटी को कई बार मैदानी क्षेत्रों का दौरा भी करना पड़ता है। इसका एक मकसद यह भी है कि जीई फसलों के कृषिजन्य लाभ के बारे में पता लगाया जा सके। इसके तहत अगर कोई लाभ है तो कमेटी ही सीमित मैदानी परीक्षणों के अंर्तगत वैज्ञानिक सूचनाएं जुटाने का काम करती है, ताकि आरसीजीएम आदि को नए प्रायोगिक डिजाइन सुझाए जा सकें। 1989 के नियम में राज्य सरकारों की भूमिका को भी स्पष्ट किया गया है, लेकिन राज्य सरकारें यह कहती हैं कि जीएम से जुड़े फैसले केंद्र सरकार पर ही निर्भर हैं। हालांकि इस नियम के तहत राज्य बायेटेक्नोलॉजी समन्वय समिति के गठन की बात कही गई है, जिसके पास वैधानिक प्रावधानों की निगरानी व जांच करने का अधिकार होगा। यदि प्रावधानों का कहीं कोई उल्लंघन पाया जाता है तो इसके खिलाफ सख्त कार्रवाई करने का भी उसे अधिकार होगा। इसके अलावा नियमों में जिला स्तर पर बायोटेक्नोलॉजी समिति के गठन की भी बात कही गई है, जिसके प्रभारी जिला कलेक्टर होंगे और यह जेनेटिकली मॉडिफाइड आर्गेनिजम्स/ खतरनाक सूक्ष्मजीवियों के उपयोग और पर्यावरण पर पड़ने वाले इसके प्रभावों के बारे में सुरक्षा नियमों की निगरानी करेगी।

भारत में स्वीकृति और नियमन की प्रक्रिया की योजना

खाद्य पदार्थों के उत्पादन, उन्हें जानबूझकर या विचार–विमर्श के बाद जारी करने आदि के मामले में स्वीकृति के संबंध में नियम (खंड 13 के तहत, स्वीकृति देना) बनाए गए हैं, साथ ही इसके मार्ग–निर्देश भी तय कर दिए गए हैं। इसमें आवेदक द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले नियंत्रण, परिवीक्षण, प्रतिबंधात्मक उपाय और उद्यम के लेआउट के बारे में साफ मार्ग–निर्देश जारी किए गए हैं, ताकि राज्य बायोतकनीक समन्वय समिति या जिला स्तरीय समिति को सूचनाएं पेश करने में परेशानी न हो।

1986 के पर्यावरण संरक्षण कानून के अनुच्छेद (15) में सजा के प्रावधान किए गए हैं। इसके मुताबिक जो भी इस कानून के किसी भी प्रावधान का पालन नहीं करेगा या इसका उल्लंघन करेगा, या फिर इसके नियमों व दिशा–निर्देशों की अवमानना करेगा, उसे अधिकतम पांच साल की जेल या/और एक लाख रुपए तक के जुर्माने की सजा हो सकती है। सजा मिलने के बाद भी यदि नियमों का उल्लंघन जारी रहा तो प्रतिदिन के हिसाब से 5000 रुपए का जुर्माना किया जाएगा और यह सजा नियमों के उल्लंघन के साबित होने के पहले दिन से ही लागू हो जाएगी।

अब जीई फसलों के फील्ड ट्रायल के संबंध में एक और शर्त यह भी जोड़ी गई है कि फसल उत्पादक को पहले स्थानीय ग्राम पंचायत से इसकी अनुमति लेनी होगी, साथ ही राज्य सरकार समेत स्थानीय स्तर के सभी प्रशासनिक विभागों को भी इस बात की सूचना देनी होगी।

ईपीए के 1989 के वैधानिक प्रावधानों के अलावा भारत में जीई उत्पादों के बारे में एक अन्य वैधानिक तंत्र भी है, जो खाद्य पदार्थों की मिलावट में रोकथाम का कानून (पीएफए) कहलाता है। इसे केंद्रीय स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय की ओर से लागू करवाया जाता है। ये वे नियम और कानून हैं, जिन्हें जीएम उत्पादों और खाद्य पदार्थों की लेबलिंग के लिए उपयोग में लाया जाता है। पीएफए नियम के खंड 37 (ई) में कहा गया है कि एक बार अधिसूचित हो जाने के बाद इसमें दिए गए खंड को मानना अनिवार्य होगा। इसके अनुसार, जेनेटिक मॉडिफाइड फूड की लेबलिंग करते समय अन्य लेबलिंग आवश्यकताओं के अलावा हर पैकेट पर, फिर चाहे वह प्राथमिक खाद्य पदार्थ हो या प्रसंस्कृत, इसके किसी अन्य खाद्य पदार्थ की मिलावट की गई हो या यह ऐसा कोई खाद्य पदार्थ हो, जिसमें जीएम खाद्य को मिलाया गया हो, आयातित हो या घरेलू स्तर पर बना पदार्थ, उसमें यह लिखना जरूरी होगा कि यह जेनेटिकली मॉडिफाइड है। पीएफए नियमों के सेक्शन 48 एफ में कहा गया है–'जेनेटिकली मॉडिफाइड फूड के मामले में प्रतिबंध –' कोई भी व्यक्ति बिना अनुमति के या जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी

की स्वीकृति के जीएम सामग्री से बने खाद्य पदार्थ का भारत में निर्माण, आयात, परिवहन, भंडारण या वितरण, बिक्री का काम नहीं कर सकता है।

इन नियमों के तहत जीईएसी द्वारा स्वीकृत किए गए उत्पादों और जीएम फसलों को (चाहे वे भारत में पैदा किए गए हों या आयातित हों) में भी यह सूचना देते हुए एक लेबल लगाया जाना चाहिए कि ये जेनेटिक मॉडिफिकेशन से बनाए गए हैं। इस नियम का उल्लंघन पीएफए एक्ट और इसके नियमों की अवमानना मानी जाएगी। हालांकि इन नियमों का मसौदा मार्च 2006 में पेश किया गया था और विशेषज्ञ समिति द्वारा इसे मंजूरी दिए जाने और सार्वजनिक रूप से इस बारे में प्रतिक्रिया लेने के बावजूद इन्हें अब तक अधिसूचित नहीं किया गया है। इसका एक कारण यह दिखाया जाता है कि नया फूड सेफ्टी और स्टैंडर्ड्स एक्ट जीएम फूड के नियमन के काम को देखेगा। ईपीए और पीएफए/एफएसएसए के अलावा सात अप्रैल 2006 को वाणिज्य मंत्रालय ने एक और अधिसूचना निकाली थी, जिसमें देश में आयात किए जाने वाले सभी सामानों के लिए निम्नलिखित मार्ग–निर्देशों का अनुपालन जरूरी माना गया था (1989 के ईपीए नियमों के आधार पर आवेदन करने के बाद):

आयात के समय जेनेटिक मॉडिफिकेशन से तैयार सभी उत्पादों के बारे में यह बताना आवश्यक होगा कि ये जेनेटिकली मॉडिफाइड हैं। अगर ऐसे किसी माल पर यह लिखा नहीं पाया जाता है और उसमें यदि जेनेटिकली मॉडिफाइड सामग्री बरामद हुई तो आयातक को 1992 के विदेश व्यापार कानून (विकास व नियमन) के तहत दंडित किया जाएगा।

इसके अलावा 1966 का बीज कानून भी जीई बीजों पर लागू होता है। इसके अनुसार, राज्य सरकार किसी तरह के बीज के विपणन का लाइसेंस जारी करने के लिए अधिकृत है, जिसमें जीईएसी द्वारा बायोसेफ्टी के हिसाब से मंजूर किए गए जीएम बीज भी शामिल हैं। ऐसे में राज्य सरकार को एसबीसीसी के माध्यम से फील्ड ट्रायल के समय हस्तक्षेप करने का अधिकार होता है (1989 के ईपीए नियमों के

आधार पर), ताकि जीएमओ को पर्यावरण में पहुंचने से रोका जा सके। इसके अलावा राज्य सरकारें अन्य कानूनी प्रावधानों में तय अपने अधिकारों का यह फैसला करने में भी इस्तेमाल कर सकती हैं कि ऐसी जीएम फसलों को व्यावसायिक उत्पादन की अनुमति देना है या नहीं। इस तरह से सभी मामलों में जीई फसलों के बारे में राज्य सरकार के पास अपना फैसला लेने का संवैधानिक अधिकार मौजूद है, क्योंकिकृषि राज्य का ही एक विषय है।

इस मसले में 2005 का पेटेंट एक्ट का भी खास महत्व है, क्योंकि अब जीन्स और तकनीकें भारत में भी पेटेंट हो सकती हैं। आदर्श परिस्थितियों में जीएम फसलों के बारे में भारत द्वारा कार्टिजेना प्रोटोकॉल जैसे अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में बायोसेफ्टी के बारे में किए गए वादों को भी नियमों में शामिल किया जाना चाहिए, लेकिन वास्तव में इस प्रोटोकॉल में जताई गईं प्रतिबद्धताओं को कानूनन अमल में नहीं लाया जाता है। उपर बताए गए सभी कानूनों और नियमों के बावजूद देश में इनके अमल के मामले में वास्तविक परिस्थितियां काफी अलग नजर आती हैं। कुछ बेहद मूलभूत नियमों के आधार पर भारत में स्थापित नियामक संस्थाओं पर समय–समय पर सवाल खड़े किए जाते रहे हैं:

बायोसेफ्टी नियमन

1. जीएमओ की बायोसेफ्टी को लेकर अब तक जो कानूनी ढांचा तैयार किया गया है, उस पर उंगलियां उठाई जा सकती हैं। मिसाल के लिए, ओईसीडी की गाईडलाइन के अनुसार नियत जांच परीक्षण के सेट को कहीं और से आयातित कर, सभी जीएम फसलों के जहरीलेपन, एलर्जी पैदा करने वाले उनके गुण आदि के लिए तय कर दिया गया है। यह टेस्ट जीएम फसलों की बायोसेफ्टी का आकलन करने और उनके व्यावसायिक उत्पादन के बारे में फैसला लेने के लिए किया जाता है। लेकिन इस तरह की टेस्टिंग का प्रोटोकॉल, खासतौर पर इसके लिए जो टेस्ट तय किए गए हैं (स्वास्थ्य और पर्यावरण

दोनों की सुरक्षा के लिए), वे अत्यधिक संदेहजनक हैं। वैज्ञानिकता और लघु/दीर्घावधि के अनपेक्षित परिणामों के हिसाब से उनकी क्षमता सवालों के घेरे में है। सबसे अहम बात यह है कि ये सभी परीक्षण जीएम फसलों का उत्पादन करने वाले खुद ही करते हैं और बगैर किसी खास निगरानी के परीक्षणों से संबंधित आंकड़े प्राप्त करते हैं। इसमें ऐसे किसी स्वतंत्र जांच का प्रावधान नहीं किया गया है, जो फैसला लेने के काम में मदद करे। ऐसे में निर्णय लेने का काम तकनीक के इस तरह के संकुचित आकलन के जरिए होता है और इसमें शामिल आंकड़े संदेहजनक परीक्षणों और परस्पर विरोधी स्वार्थों के साथ प्राप्त किए जाते हैं।

2. अन्य स्थानों पर, जैसा कि नॉर्वे में तकनीक के असर का आकलन काफी विस्तृत पैमाने पर होता है। यह तकनीकी बायोसेफ्टी के दायरे में आता है। नॉर्वे का जीन तकनीक कानून नियामकों से कुछ अहम सवाल पूछता है। जैसे—क्या यह नीतिपरक और सामाजिक रूप से न्यायसंगत है? यहां जीन तकनीक के प्रभावों का ऐसा विश्लेषण कृषिजन्य अध्ययनों के दायरे से बाहर भी जा सकता है।
3. भारत में बायोसेफ्टी टेस्टिंग के समानांतर खुले परीक्षण भी जारी रहते हैं, साथ ही अपरीक्षित, अस्वीकृत उत्पादों को किसानों के खेतों में बिना समुचित परीक्षण के ट्रायल किया जाता है और ये परीक्षण अक्सर नीतिपरक नहीं होते।
4. कई स्थानों पर कई बार जीएम फसलों का विकास और प्रयोग ओपन एयर ट्रायल के तौर पर बिना एसबीसीसी और डीएलसीसी की मौजूदगी में किया जाता है, जो ईपीए नियमों का सरासर उल्लंघन है।
5. यह भी पाया गया है कि आरसीजीएम को हमेशा स्वीकृति देने वाले प्राधिकरण की भूमिका निभाने दी जाती है, जबकि जीईएसी को परे हटा दिया जाता है। आरसीजीएम भले ही वैज्ञानिकों की कमेटी हो, लेकिन मंत्रालय की समिति के तौर पर जीईएसी

की वह संस्था है, जिस पर परीक्षण के प्रभाव का विस्तृत रूप में अध्ययन करने की अपेक्षा की जाती है। यह अध्ययन मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण, व्यापार, आर्थिक, वैधानिक, राजनीतिक और अन्य पहलुओं को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इस मामले में जीईएसी के क्रियाकलापों को असंतोषजनक माना जा सकता है। जीईएसी में निर्णय के समय क्या कोरम से संबंधित नियम भी स्पष्ट नहीं है। वैसे आरसीजीएम और जीईएसी दोनों पिछले एक दशक में जीएम फसलों के विकास और भारत में इसे पेश किए जाने से ही बेहद अपारदर्शी तरीके से अपना काम करते रहे हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि उनकी निर्णय प्रक्रिया किस पर आधारित है।

6. जीएम फसलों के फील्ड ट्रायल में राज्य सरकार की कोई भूमिका नहीं होती। इससे बड़ी दुर्भाग्यजनक बात और क्या होगी कि किसानों की जिस धरती पर ये मैदानी परीक्षण किए जाते हैं, उन्हें यही नहीं बताया जाता कि हो क्या रहा है। स्थानीय अधिकारियों और पंचायत को इस बारे में अंधेरे में रखा जाता है। इससे भी बड़ी चौंकाने वाली बात यह है कि जीईएसी, जो कि ऐसे परीक्षणों को स्वीकृति देता है, उसे भी इस बात की कोई जानकारी नहीं होती कि देश में इस तरह के परीक्षण किए जा रहे हैं। अब जबकि ट्रायल की जगह ही अगर सरकार को मालूम न हो तो यह समझना मुश्किल नहीं है कि ऐसे परीक्षणों की निगरानी किस तरह से होती होगी।
7. जीएम फसलों के बारे में अब तक के सभी फैसले कंपनियों ने उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर लिए हैं। जीएम फसलों के संबंध में किसी भी पहलू पर कोई स्वतंत्र शोध नहीं कराया गया। यह साफ नहीं है कि नियामक संस्थाएं क्या जीएम फसल उत्पादक कंपनियों से यह अपेक्षा करती हैं कि वे आगे आकर सरकार को अपनी समस्याएं बताएंगे और वह भी कोई हो तो। यही नहीं, फील्ड ट्रायल में कंपनियां जो आंकड़े प्राप्त करती

हैं, उनके बारे में न तो परामर्शदाताओं से कोई चर्चा की जाती है और न ही उन्हें वैज्ञानिक जांच के लिए सार्वजनिक किया जाता है।

8. नियमन को लेकर और भी सवाल उठाए जा सकते हैं। जीएम फसलों के कई उत्पादक ही जीईएसी और आरसीजीएम में नियामक के रूप में पदस्थ हैं, जिससे हितों को लेकर गंभीर मतभेद उभरते रहे हैं। इन नियामकों को टेस्ट प्रोटोकॉल और प्राप्त नतीजों के बारे में वस्तुपरक निर्णय लेने की अपेक्षा की जाती है।
9. फील्ड ट्रायल या व्यावसायिक कृषि की समीक्षा या उनकी निगरानी के लिए मल्टी डिसिप्लिनरी, विस्तृत और वैज्ञानिक स्तर पर कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है, जो निर्णय लेने में मदद करे। सिविल सोसायटी द्वारा फील्ड ट्रायल की निगरानी के बाद मिली रिपोर्ट के आंकड़ें बताते हैं कि नियामक संस्थाओं की ओर से इस तरह की निगरानी की कोई व्यवस्था ही नहीं है। यही नहीं, वैधानिक व संस्थागत स्तर पर तय वैज्ञानिक प्रोटोकॉल का भी कई बार उल्लंघन होता है या फिर निगरानी के दौरान इन्हें नजरअंदाज कर दिया जाता है।
10. भारत में लागू नियमन तंत्र को यह भी नहीं मालूम कि दूसरी जगहों से मिल रही शुरुआती चेतावनी कैसे प्राप्त की जाए या फिर भारत की पहले जीएम फसल बीटी कॉटन के मामले में बिगड़ी परिस्थितियों को कैसे संभाला जाए। अगर इस मामले में शुरुआती चेतावनी को पहले ही समझ लिया गया होता तो कार्टिजेना प्रोटोकॉल में भारत द्वारा सावधानीमूलक सिद्धांतों को शामिल किया जाना अर्थहीन साबित नहीं होता।
11. भारत में यूं तो कृषि राज्य का विषय है, लेकिन राज्य सरकारों को इस बारे में कोई भी कानून बनाने का हक नहीं है (ईपीए नियमों के आधार पर प्रशासन करने के सिवा), ताकि विकल्प के तौर पर चुनी गई जीएम फसलों का ट्रायल या उसकी बिक्री को रोका जा सके।

12. पूरे नियामक तंत्र में सतत पर्यवेक्षण की कोई व्यवस्था नहीं की गई है (जैसे ओंबड्समैन की नियुक्ति आदि), जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि कानून का स्वतंत्र, वैज्ञानिक, कड़ाई से, जवाबदेही के साथ, सहभागिता से और पारदर्शी रूप से पालन किया जा रहा है।

वर्ष 2001 से देशभर में बीटी कॉटन की अवैध रूप से उत्पत्ति (देश में बीटी कॉटन के किसी भी संकर की व्यावसायिक खेती की औपचारिक अनुमति देने से पूर्व), फील्ड ट्रायल से सप्लाई चेन में प्रदूषण पाए जाने के सुबूत, फील्ड ट्रायल के दौरान ही बायोसेफ्टी नियमों के उल्लंघन के कई मामलों का सामने आना, ईपीए द्वारा तय कई संस्थाओं की गैर मौजूदगी, खेती के दौरान प्रारंभिक संकेत मिलने के बावजूद उनकी वैज्ञानिक जांच करवा पाने में विफलता आदि को देश में कानूनों को लागू कर पाने में संपूर्ण नाकामी के तौर पर देखा जा सकता है। इससे जुड़े नीतिगत सवाल तो हैं ही। सबसे अहम बात तो यह है कि इस बात का अभी तक पता नहीं चल सका है कि कब, किसने, कैसे और क्यों (किस आधार पर) यह फैसला किया कि भारतीय किसानों के लिए जीएम फसलें जरूरी हैं और इसमें भारतीय कृषि का उज्जवल भविष्य है।

भारत में जीई फसलों का अनुभव

बीटी कॉटन जैसे उन जीएम फसलों के बारे में किसानों के अनुभव क्या रहें, जिनके व्यावसायिक उत्पादन के लिए 2002 में पहली बार अनुमति दी गई थी।

2007–08 के खरीफ सीजन में भारतीय बीज बाजार में 135 जीएम कॉटन के बीजों को बेचने की जीईएसी ने अनुमति दी थी, जिनका उत्पादन 25 कंपनियों ने किया था। पिछले सालों में 70 से ज्यादा ऐसे संकर बीजों को भारत में अनुमति दी गई है। इन स्वीकृत बीजों के साथ चार घटनाएं जुड़ी हुई हैं, जिनमें मोन्सांतो के अधिकार वाले बोलगार्ड 1 और 2 गुण बहुतायत में शामिल हैं। इन बीजों के अतिरिक्त बहुत से जीएम कॉटन बीज भी किसानों को अवैध रूप से बेचे गए। जीएम कॉटन के

बारे में देशभर के किसानों के अनुभव के दस्तावेजीकरण का काम 1998 में शुरू किया गया, जब डीबीटी ने मोन्सांतो मायको कंपनी के कुछ बीटी कॉटन बीजों को गोपनीय तौर पर फील्ड ट्रायल की अनुमति दी। इन संकर बीजों को आयातित बीटी कॉटन की किस्म से विकसित किया गया था। ये बीज अमेरिका में 1995 में जर्मप्लाज्म से विकसित किए गए थे। 2002 में पहली बार मोन्सांतो–मायको के तीन संकर बीजों के व्यावसायिक उत्पादन को मंजूरी दी गई थी।

इस तकनीक के नियमन और फैलाव की बुनियाद ही गलत रही। बीटी कॉटन का बायोसेफ्टी टेस्ट ही सवालों के घेरे में है। कानून के तहत स्वीकृति के लिए किया गया एक्यूट ओरल टॉक्सिसिटी टेस्ट काफी पहले 1993 में किया गया था और वह भी अमेरिका स्थित मोन्सांतो की प्रयोगशाला में। कुछ टेस्ट तो किए ही नहीं गए और कुछ को बड़े ही अवैज्ञानिक तरीके से निपटा दिया गया। इन परीक्षणों से मिले आंकड़ों को सारांश रिपोर्ट बनाने के अलावा सार्वजनिक रूप से जारी भी नहीं किया गया। परीक्षणों में भारत में न तो कॉटन उत्पादकों के सामने मौजूद परिस्थितियों को देखा गया और न ही भारतीय परिस्थितियों को सूट करने वाले परीक्षण तय किए गए। मिसाल के लिए इस बात पर कोई शोध नहीं किया गया कि कपास के खेतों में अनियंत्रित रूप से घास चरने वाले मवेशियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इन मवेशियों पर बायोसेफ्टी से जुड़े प्रभाव का अध्ययन करने के लिए सिर्फ बकरियों पर ही परीक्षण किया गया। यह भी बेहद सीमित दायरे में बीटी कॉटन बीजों से बना आहार खिलाकर किया गया। इन परीक्षणों से बीटी कॉटन के खेतों में खुले तौर पर हरी घास और वनस्पति खाने वाले मवेशियों पर पड़ने वाले प्रभाव को नहीं जांचा जा सकता है, खासतौर पर तब, जबकि चरनोई की भूमि लगातार संकुचित होती जा रही है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बायोटेक्नोलॉजी वह तकनीक है, जिसके बायोसेफ्टी परीक्षणों में उन अनपेक्षित परिणामों के बारे में पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है, जो कि तकरीबन सभी कृषिजन्य परिस्थितियों में उभरकर सामने आते हैं। 2002 में उत्पादन की अनुमति दिए जाने के बाद अभी तक बीटी

कॉटन के बारे में इस बात का स्पष्ट प्रमाण नहीं मिल सका है कि यह मानव स्वास्थ्य, पशुधन, लाभकारी कीटों या सॉइल बायोटा आदि के लिए सुरक्षित है। भारत में बीटी कॉटन की खेती को डीबीटी ने मंजूरी दी थी। यह खुद एक इस तकनीक का बड़े ही आक्रामक तरीके से प्रचार करता है। यह कदम 1989 के उन नियमों का उल्लंघन है, जिसमें कहा गया है कि जेनेटिकली मॉडिफाइड आर्गेनिज्म को पर्यावरण में छोड़ने की अनुमति देने का काम सिर्फ जीईएसी ही कर सकता है, जो कि पर्यावरण मंत्रालय के अधीन गठित किया गया है। जब डीबीटी के इस फैसले को चुनौती दी गई तो अपीलीय प्राधिकरण ने इसे खारिज करते हुए कहा कि डीबीटी इस तकनीक के परीक्षण और इसके शोध को अनुमति देने की हकदार है, क्योंकि जीईएसी ने ही अपनी एक बैठक में उसे इसका अधिकार दिया था।

जीएम तकनीक के गोपनीय परीक्षण को लेकर भी कर्नाटक और आंध्रप्रदेश जैसे राज्यों की सरकारों ने अपनी आपत्ति जताई थी। बाद में कई शोधकर्ताओं ने भी बताया कि इन परीक्षणों की निगरानी व्यवस्था अपर्याप्त थी और इसमें वैज्ञानिक प्रोटोकॉल का पालन नहीं किया गया था। इसके अलावा जो सबसे प्रमुख बात थी, वह यह कि परीक्षण स्थल से बीटी कॉटन को सप्लाई चेन को संक्रमित होने दिया गया। यही कहानी कई अन्य खाद्य पदार्थों के परीक्षण के दौरान भारत में अभी भी दोहराई जा रही है।

गुजरात में नवंबर 2001 में पाया गया कि वहां बीटी कॉटन की व्यावसायिक खेती के लिए कोई स्वीकृति नहीं दी गई थी। इसके बावजूद नवभारत 151 नाम की बीटी कॉटन की एक प्रजाति को हजारों एकड़ क्षेत्र में उगाया गया। इसके बाद बीटी कॉटन को अवैध तौर पर उत्पादित करने के मामलों में भी बढ़ोतरी हुई है। देश के हजारों किसानों के बीजों में बीटी कॉटन के संकर बीज मिला दिए गए। छोटी कंपनियों, उद्यमों के साथ भी यही किया गया। आज तक इन मामलों पर नियंत्रण नहीं किया जा सका है। वर्ष 2002 में भारत में लाए जाने के बाद पहले साल से ही जीएम कॉटन ने उन भरोसों और वादों को तोड़ा है, जिन्हें औद्योगिक

समुदाय ने किया था। आंध्रप्रदेश में राज्य के कृषि मंत्री ने विधानसभा में यह माना कि बीटी कॉटन का प्रदर्शन अपेक्षा से कहीं कम रहा है और बीटी कॉटन के मुकाबले गैर बीटी कॉटन उगाने वाले किसानों ने कहीं ज्यादा फसल ली और मुनाफा कमाया। वर्ष 2004 में भी आंध्रप्रदेश सरकार ने मेसर्स मायको को दिए आदेश में उन किसानों को चार करोड़ रुपए का मुआवजा देने को कहा, जिनकी बीटी कॉटन की फसल बरबाद हो गई थी। हालांकि कंपनी ने इस आदेश को मानने से इनकार कर दिया। नुकसान का यह आंकड़ा सिर्फ राज्य के वारंगल जिले में था पर सरकार की रिपोर्ट में कहा गया कि प्रदेश के कई जिलों में किसानों की बीटी कॉटन की फसल बरबाद हो गई थी।

वर्ष 2005 में मध्यप्रदेश सरकार को भी निमाड़ बेल्ट में किसानों द्वारा बीटी कॉटन की फसल बरबाद हो जाने की शिकायतों से दो–चार होना पड़ा। वर्ष 2005 और 2006 में मीडिया में इस बात की कई रिपोर्टें सामने आईं कि बीटी कॉटन की फसल तबाह होने के कारण कई किसान आत्महत्या पर मजबूर हो रहे हैं।

बायोटेक इंडस्ट्री द्वारा बीटी कॉटन को बड़े ही आक्रामक तरीके से बेचा जाता है। सिविल सोसायटी की रिपोर्ट कहती है कि अब तक इस कदर आक्रामक तरीके से कोई भी बीज (या फसल) नहीं बेची गई। भारत में बीटी कॉटन की मार्केटिंग में सिद्धांतों को दरकिनार कर विज्ञापनों में करोड़ों रुपए लगाए गए हैं। आंध्रप्रदेश के वारंगल जैसे जिले में किसानों के पास बीटी कॉटन के बीजों के विकल्प का अध्ययन करने के बाद वॉशिंगटन यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है, जिसमें कहा गया है कि बीजों के चुनाव का उनका निर्णय नासमझी से भरा है, मानो यह उनकी एक सनक हो। शोधकर्ताओं ने कहा कि किसानों का निर्णय उनकी पर्यावरण के प्रति समझ पर आधारित नहीं है।

भारत के सभी राज्यों के बारे में सिविल सोसायटी की रिपोर्ट यह है कि बीटी कॉटन से किसानों को न तो अच्छी फसल मिली और न ही गैर बीटी किसानों की तुलना में उनका मुनाफा बढ़ा है। शोध से यह भी पता

चला है कि एनपीएम कॉटन या जैविक कॉटन जैसे गैर रासायनिक कॉटन उत्पादन की तुलना में बीटी कॉटन ने किसानों को बहुत ही थोड़ा लाभ दिया है। खासतौर पर महाराष्ट्र में यह बात आधिकारिक रूप से दर्ज की गई है। गुजरात और आंध्रप्रदेश सरकारों ने इस बात को आधिकारिक तौर पर माना है कि उनके राज्यों में कॉटन का उत्पादन बढ़ने से बीटी कॉटन का कोई संबंध नहीं है। बीटी कॉटन के बारे में एक रिपोर्ट यह भी है कि गैर बीटी कॉटन की तुलना में इसमें रासायनिक कीटनाशकों की ज्यादा खपत होती है। इसमें कीटों पर नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का ज्यादा छिड़काव करना होता है। ऐसी रिपोर्टें मिली हैं कि मीली बग और स्अेम बोरर जैसे अन्य कीट भी अब बीटी कॉटन की फसल को प्रभावित करने लगे हैं। इसके अलावा बीटी कॉटन की फसल में नई–नई बीमारियां नजर आने लगी हैं। ये बीमारियां कॉटन उत्पादक किसानों के लिए पहले अनजानी थीं। इनमें टोबैको स्ट्रीक वायरस, ब्रांज वील्ट आदि हैं। बीटी कॉटन की फसल में बीमारियों की आशंका ज्यादा है क्योंकि इसकी फसलों में कीटनाशकों के अवशोषण की क्षमता अधिक होती है और यही रोगवाहक का काम भी करता है। ऐसे में आंध्रप्रदेश के एनजी रंगाकृषि यूनिवर्सिटी ने 'व्यवसाय पंचागम' के नाम से किसानों के लिए एक सलाह पुस्तिका निकाली है, जिसमें किसानों को सचेत करते हुए कहा गया है कि बीटी कॉटन कीटनाशकों को ज्यादा पैमाने पर सोखता है और इसमें गैर बीटी कॉटन की तुलना में बीमारियों की आशंका भी अधिक होती है।

पंजाब जैसे कुछ राज्यों में किसानों ने पाया कि जिस खेत पर उन्होंने बीटी कॉटन की फसल बोई थी, उसी खेत में गेहूं की उपज भी कम मिलती है। इसके अलावा धान, मक्का और मिर्च की फसल में बीमारियां लगने और उनके विकास पर असर पड़ने जैसी कई अन्य रिपोर्टें भी मिली हैं। हालांकि इस बारे में अभी तक आधिकारिक तौर पर कोई जांच नहीं की गई है, जबकि इस संबंध में नियामकों को लगातार रिपोर्टें मिल रही हैं। यही नहीं, जो किसान लगातार बीटी कॉटन की फसल ले रहे हैं, उनकी शिकायत यह है कि उनका फसल उत्पादन साल–दर–साल कम होता जा रहा है।

रासायनिक खाद का इस्तेमाल बढ़ा है : सामान्य कॉटन के मुकाबले बीटी कॉटन के खेतों में रासायनिक खाद का उपयोग बढ़ा है। इस बात के प्रमाण सभी जगहों से मिले हैं। वास्तव में अब तक तो बीटी कॉटन के लिए कृषि वैज्ञानिकों द्वारा (मिसाल के लिए 'व्यवसाय पंचागम' में किसानों से कहा गया है कि वे अधिक खाद के विकल्प पर विचार करें) रासायनिक खाद की अधिक मात्रा की सिफारिश की जाने लगी है।

मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव : कई रिपोर्ट मिले हैं कि बीटी कॉटन मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। मध्यप्रदेश में जन स्वास्थ्य अभियान की प्रारंभिक जांच रिपोर्ट यह कहती है कि भारत में 2005 में खेतों में काम करने वाले श्रमिकों में एलर्जी की शिकायत का पता चला था। अध्ययन के अनुसार, बीटी कॉटन को छूने भर से और इसकी फसल को इकठ्ठा करने, उठाने आदि के पांच घंटे बाद इन श्रमिकों के शरीर में घातक एलर्जी के लक्षण पैदा हो गए थे। ऐसे 23 मरीजों को अस्पताल में दाखिल कराया गया था, जिनमें से 10 की हालत गंभीर थी। एलर्जी के कारण किसानों की त्वचा लाल पड़ जाती है। कुछ लोगों को तो इसके कारण आंखों में जलन, पानी आने, पलकों में सूजन, छींक आने और नाक बहने तक की शिकायतें हुई हैं। जिन किसानों ने अपने काम के दौरान शरीर को ढंक रखा था, वे सुरक्षित रहे। इन सबके बावजूद आधिकारिक एजेंसियों ने इन समस्याओं के प्रति आंखें बंद कर रखी थीं।

स्ट्रेस टॉलरेंस काफी कम : यह भी पाया गया कि गैर बीटी कॉटन की तुलना में बीटी कॉटन का स्ट्रेस टॉलरेंस काफी कम है। इसके कारण मौसम में जरा से बदलाव, चाहे वह अत्यधिक गर्मी हो या बारिश, बीटी कॉटन की फसल पर इसका सबसे पहले और सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। गैर बीटी कॉटन के पौधे इस तरह के मौसमी प्रतिकुलताओं को बीटी कॉटन के पौधों की तुलना में कहीं बेहतर तरीके से बर्दाश्त कर सकते हैं। बीटी कॉटन के पौधों की तनाव बर्दाश्त न कर पाने की बात का कई आधिकारिक रिपोर्टों में खुलासा हो चुका है।

मवेशियों के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव : बीटी कॉटन का सबसे

चिंताजनक पहलू इसके खेतों में घास चरने वाले मवेशियों की मौत के रूप में सामने आया है। ये जानवर इन खेतों में कपास की खेती के बाद चरने आते हैं। आंध्रप्रदेश और माहराष्ट्र में 2003 से 2005 के दौरान मवेशियों के मारे जाने की ऐसी कई घटनाएं सामने आई हैं। इन राज्यों में बीटी कॉटन का रकबा लगातार बढ़ रहा है। आंध्रप्रदेश के वारंगल जिले में 2006 में करीब 12000 भेड़ों की मौत बीटी कॉटन के खेतों में जहरीली घास चरने के कारण हुई है। 2007 और 2008 में ऐसी ही रिपोर्टें आंध्रप्रदेश के आदिलाबाद, मेडक और खम्मम से आईं, जब कि महाराष्ट्र में बुलढाना और यवतमाल में भी मवेशियों के मरने की खबर मिली। अन्य स्थानों पर भी किसान और ढोर चराने वालों का कहना है कि मवेशी बीटी कॉटन के चारे को खाना नहीं चाहते हैं।

बीज भी महंगे : पिछले चार साल के दौरान बीटी कॉटन की खेती का एक और पक्ष इसके बीजों की बढ़ती कीमत भी है। स्थानीय बीज कंपनियों को मोन्सांतो–मायको को रॉयल्टी के बतौर एक बड़ी रकम अदा करनी पड़ती है और यही बीजों की कीमत बढ़ने का सबसे प्रमुख कारण भी है। मोन्सांतो–मायको के पास बीटी कॉटन के बीजों का तकनीकी अधिकार भी है, इसलिए किसानों को बीजों की कीमत के तौर पर चार गुनी ज्यादा रकम अदा करनी पड़ती है। पहले से ही कर्ज में डूबे कपास उत्पादक भारतीय किसानों पर भारी बोझ पड़ रहा है।

भारत में पिछले छह साल से जारी बीटी कॉटन की खेती की कहानी का सारांश यह है कि इस जीएम फसल की वैधानिक व्यावसायिक खेती से किसानों की माली हालत पर विपरीत प्रभाव पड़ा है (इसमें बीजों का अत्यधिक मूल्य, मोन्सांतो को रॉयल्टी देने पर उसका अपरोक्ष प्रभाव भी शामिल है)। इसके अलावा कपास के खेतों की इकोलॉजी में बदलाव, फसल के बीमारियों के चपेट में आने के मामलों की लगातार बढ़ती संख्या (इसके चलते किसानों को कीटों व बीमारियों की रोकथाम में पहले से कहीं ज्यादा मात्रा में कीटनाशकों का उपयोग करना पड़ रहा है), मिट्टी की सेहत पर पड़ने वाला विपरीत प्रभाव, फसल का मौसमी परिस्थितियों को बर्दाश्त न कर पाना और उपज की अनिश्चितता भी बीटी कॉटन

के प्रभावों में शामिल है। इन जोखिमों से निपटने के लिए किसान अपने संसाधनों का और अधिक उपयोग कर रहे हैं (ज्यादा सिंचाई, ज्यादा खाद आदि के तौर पर) और इससे मानव स्वास्थ्य पर ही नहीं, बल्कि बीटी कॉटन के खेतों में घास चरने आने वाले मवेशियों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत असर पड़ रहा है।

सिविल सोसायटी ने अपने कई मैदानी अनुभवों के आधार पर तैयार अपनी रिपोर्ट में बीटी कॉटन को बड़ी दृढ़ता से अवैज्ञानिक कहकर नकार दिया है। इस बारे में लिए गए फैसलों का झुकाव भी बीटी कॉटन कंपनियों की ओर ही नजर आता है, न कि इसका उत्पादन करने वाले किसानों और उपभोगकर्ताओं की तरफ। बीटी कॉटन से मिले अनुभवों से मिले सबक को हमें अन्य जीएम फसलों के बारे में फैसला लेते समय उपयोग में लाना चाहिए। बीटी कॉटन ने हमें यह सबक सिखाया है कि किसी भी नई तकनीक के मामले में सावधानी का सिद्धांत लागू करने के लिए इससे बेहतर और कोई उदाहरण नहीं हो सकता है।

भारत में जीएम आयात

पर्यावरण संरक्षण कानून 1989 के तहत जीन तकनीक से पर्यावरण, प्रकृति और मानव स्वाास्थ्य की सुरक्षा के लिए कुछ नियम बनाए गए हैं। ये नियमजेनेटिकली इंजीनियर्ड आर्गेनिज्म के साथ जीई कोशिकाओं/आर्गेनिज्म/उतकों से बने उत्पाद/तत्व या खाद्य पदार्थ सभी के लिए लागू हैं। भारत में सभी जीई उत्पादों या खाद्य पदार्थों के आयात से पहले जीईएसी की अनुमति लेनी जरूरी है। जीईएसी को इन पदार्थों के देश में पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के बाद ही आयात की अनुमति देनी चाहिए। वास्तव में ऐसा हो नहीं रहा है।

विशेषकर सोयाबीन तेल के रूप में जीएम पदार्थों के आयात की अभी तक कोई निगरानी नहीं हो सकी है और न ही इस बारे में कोई नियमन कानून है। सोया तेल का उत्पादन करने वाले देशों में जीएम और गैर जीएम सोया के बीच कोई भेद नहीं किया जाता है। अमेरिका, ब्राजील और अर्जेंटीना में जीएम सोया ही पैदा होता है, जिनसे हम इनका

आयात करते हैं। ग्रीनपीस जैसे समूहों ने 2001 में भारत में कुछ सुपरमार्केटों में बेचे जा रहे आयातित खाद्य पदार्थों का निरीक्षण किया था, जिसमें पाया गया कि नेस्ले जैसी कंपनियों के आलू चिप्स, बेबी फूड्स जैसे उत्पादों में संक्रामक जीएम उत्पादों/तत्वों की मिलावट की गई थी। जीईएसी ने इसकी अनुमति भी नहीं दी थी। साथ ही इन उत्पादों में इस बात का लेबल भी नहीं लगा था कि ये जेनेटिक परिवर्तन से तैयार किए गए हैं।

कुछ जीइम खाद्य पदार्थ अंतरराष्ट्रीय सहायता सामग्री के साथ भी भारत आ रहे हैं। मिसाल के लिए उड़ीसा में तूफान आने के बाद प्रभावितों को दी गई खाद्य सामग्री जीएम संक्रमित पाई गई। यह तो सिविल सोसायटी की सतर्कता ही थी, जिन्होंने इसका पता लगाया और अधिकारियों को सूचित किया। बाद में 'केयर' और 'सीआरएस' जैसे कुछ अमेरिकी एनजीओ ने जीएम संक्रमित खाद्य सामग्री को भारत लाना चाहा तो जीईएसी ने इसकी अनुमति देने से इनकार कर दिया। जीईएसी को शक था कि इनके भेजे माल की खेप में स्टार लिंक कॉर्न का संक्रमण हो सकता है।

2006 में जीईएसी ने राउंडअप रेडी सोया उत्पादों को भारत में आयात करने की अनुमति दे दी (जिसके तहत रिफाइंड सोयाबीन खाद्य तेल और क्रूड डीगम्ड सोयाबीन तेल मंगाया गया)। जीईएसी ने आयातक एसोसिएशन को (कोई एक फर्म नहीं) को एक बार ही इन वस्तुओं के आयात की अनुमति दी थी। यह अनुमति खरपतवार नाशक अवशिष्टों के प्रयोगशाला में परीक्षण की जांच करने के बाद सभी संबंधित मामलों पर सुनिश्चित होने के बाद ही दी गई थी। यहां एक बात गौर करने के काबिल है कि जीएम सोया के विपरीत प्रभावों के बारे में हुए कई अध्ययन असल में राउंडअप रेडी सोया से ही जुड़े हैं। केंद्रीय वाणिज्य मंत्रालय ने 2006 में विदेश व्यापार महानिदेशालय के मार्फत अप्रैल में एक अधिसूचना जारी की (नंबर 2 (आरई–2006)/2004–2009, दिनांक 7 अप्रैल 2006), जिसमें कहा गया था कि – आयात करते समय जेनेटिक परिवर्तन से बनाए गए सभी उत्पादों के बारे में यह घोषणा करनी जरूरी

होगी कि ये जेनेटिकली मॉडिफाइड हैं। अगर ऐसे माल की खेप में यह घोषणा लिखी नहीं पाई जाती है और बाद में उसमें जेनेटिकली मॉडिफाइड उत्पाद पाए जाते हैं तो आयातक को 1992 के विदेश व्यापार कानून के तहत दंडित किया जाएगा। उसके कुछ ही महीनों बाद सोयाबीन तेल के आयात को इस नियम से मुक्त कर दिया गया। इस संशोधन में ऐसे माल के आयात से पहले जीईएसी की स्वीकृति लेने की भी बात कही गई थी।

10 जुलाई 2007 को डीजीएफटी ने एक और अधिसूचना जारी की, जिसमें कहा गया था कि जीएम चावल का आयात प्रतिबंधित है। दरअसल भारत में चावल के आयात की अनुमति तभी दी जाती है, जब आयातक संबंधित देश से यह प्रमाणपत्र पेश कर सके कि आयात किया जाने वाला चावल जीएम तकनीक से मुक्त है।

वाणिज्य मंत्रालय की ये अधिसूचनाएं नियमन की जरूरतों का एक हिस्सा हैं, लेकिन इस बारे में की गईं प्राथमिक जांच से पता चला है कि इन नियमों का पालन हमेशा नहीं किया जाता है। इस बीच सितंबर 2007 को जीईएसी ने अनपेक्षित रूप से एक अधिसूचना के माध्यम से प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के आयात को अपनी नियामक स्वीकृति से मुक्त कर दिया। इस कदम को यह कहकर न्यायोचित ठहराया गया कि जीएम खाद्य पदार्थों का मामला नवगठित फूड सेफ्टी एंड स्टैंडर्ड एक्ट (एफएसएसए) के तहत आता है और उसी के तहत इन खाद्य पदार्थों की सुरक्षा के मामले को देखा जाएगा, जबकि जीईएसी का काम सिर्फ पर्यावरण सुरक्षा को देखना है।

एफएसएसए को केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा देश में लागू किया जाना है, जिसके सेक्शन 22 में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति जेनेटिकली मॉडिफाइड फूड का निर्माण, वितरण, बिक्री या खाद्य पदार्थ के तौर पर आयात नहीं करेगा। कानून के अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति भारत में असुरक्षित खाद्य पदार्थ का आयात नहीं करेगा। इसके अलावा इस कानून के तहत खाद्य प्राधिकरण को एक वैज्ञानिक पैनल के गठन को भी कहा गया है, जो जेनेटिकली मॉडिफाइड

आर्गेनिज्म और खाद्य पदार्थों पर निगाह रखेगा। हो सकता है कि यह पुस्तिक प्रकाशित होने तक ये प्रावधान एक कानून की शक्ल अख्तियार कर लें, लेकिन जीएम खाद्य पदार्थों का नियमन किसी के बूते में नहीं है। एफएसएसए के अमल में अभी और समय लग सकता है, खासकर जीएम फूड और फसलों के मामले में।

इस पुस्तिक के प्रकाशित होते होते शायद भारत में अमेरिका जैसे देशों से कई उत्पादों का आयात हो चुका होगा, जिनके पृथक्करण का कोई तंत्र नहीं है। उनकी लेबलिंग भी नहीं की जाती है, जिससे जीएम और गैर जीएम उत्पाद आपस में मिल जाते हैं। भारत में जिन उत्पादों पर जीएम तकनीक से बने होने का संदेह है, वे हैं मक्का, कैनोला, सोया और कॉटनसीड से बने उत्पाद। इसके अलावा कुछ देशों में जीएम तकनीक से बने शिशुओं के लिए फॉर्मूला प्रोडक्ट, ब्रेकफास्ट सिरील्स, मायोनेज, क्रैकर्स, चिप्स, सलाद ड्रेसिंग, सॉसेस, खाद्य तेल, पॉपकॉर्न, स्वीट कॉर्न, कर्नेल, ब्रेड क्रंब्स, कॉर्न सिरप आदि। अगर आप यह सोचते हों कि इन उत्पादों को सुपरमार्केट से खरीदना फैशन का मामला है तो एक बार फिर से सोचें। ये उत्पाद जीएम तकनीक से संक्रमित हो सकते हैं। सुरक्षा के दृष्टिकोण से इन्हें भारत में प्रमाणीकृत भी नहीं किया गया है।

भारत में जीई फसलों की स्थिति

देश के विभिन्न संस्थानों में जीई फसलों के बारे में जारी परीक्षण अलग–अलग चरणों में हैं। बीटी बैंगन के अलावा और कोई भी फसल अभी देश में व्यापक परीक्षणों के स्तर तक नहीं पहुंच सकी है। बीटी बैंगन को 2007–08 में पहली बार किसी सार्वजनिक क्षेत्र के कृषि शोध संस्थान के कैंपस के भीतर व्यापक स्तर पर मैदानी परीक्षण करने की अनुमति दी गई थी। इस परीक्षण का समन्वय भारतीय वेजिटेबल रिसर्च इंस्टीट्यूट ने किया था। इस व्यापक परीक्षण की अनुमति देकर जीईएसी ने अपने ही नियमों को तोड़ा है, जिसमें कहा गया है कि ऐसे परीक्षणों से पहले इसके बायोसेफ्टी के मसले को अनुमति दी जानी चाहिए।

खरीफ 2006 और रबी 2006–07 के दौरान जेनेटिकली मॉडिफाइड

13 फसलों को मैदानी परीक्षणों के लिए चुना गया। इनमें कॉटन, बैंगन, बंद गोभी, अरंडी, फूल गोभी, मक्का, मूंगफली, भिंडी, आलू, चावल, टमाटर, सरसों और ज्वार शामिल थे।

2007 में एक आधिकारिक वेबसाइट (www.igmoris.nic.in) में उपलब्ध कराई गई जानकारी के अनुसार, जीएम आलू, बीटी चावल (मायको), बीटी भिंडी (मायको), बीटी बैंगन (सनग्रो सीड्स और धारवाड़ कृषि विज्ञान यूनिवर्सिटी के द्वारा निर्मित) के साथ कई कॉटन को भी ओपन एअर परीक्षणों की अनुमति दी गई थी। सबसे ज्यादा चिंताजनक बात यह है कि ये ओपन एअर ट्रायल देशभर के विभिन्न हिस्सों में फैले किसानों के खेतों में किए गए थे और इनके लिए बायोसेफ्टी की अनुमति भी नहीं ली गई थी। इसके अलावा इन परीक्षणों में होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए कोई निगरानी तंत्र भी मौजूद नहीं था। ये सभी मैदानी परीक्षण अब तक अपरीक्षित और अनजान उत्पादों के थे। इनके बारे में किसानों से कोई चर्चा नहीं की गई। परीक्षणों में तय गाइडलाइन का खुलेआम उल्लंघन किया गया। इसके मानक भी अवैज्ञानिक पाए गए।

जीएम फसलों पर सर्वाधिक प्रयोग कुछ सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं, जैसे कृषि विश्वविद्यालयों में किए गए। उपलब्ध रिपोर्टों के अनुसार, देशभर में करीब 45 विश्वविद्यालयों को इन शोध कार्यों में शामिल किया गया था। तकरीबन इतनी ही संख्या में निजी कंपनियां भी जीएम फसलों के विकास में जुटी हुई हैं। परीक्षण में शामिल सभी जीएम उत्पादों को कीटों और बीमारियों से प्रतिरोधकता के लिए जेनेटिकली मॉडिफाइड किया गया था। इनमें बीटी बैंगन, बीटी चावल, बीटी टमाटर, जीएम आलू, बीटी फूल गोभी, बीटी बंद गोभी तात्कालिक रूप से खतरनाक हैं।

बीटी बैंगन : यह एक ट्रांसजेनिक बैंगन है। (सीआरवाय 1 एसी) नाम के जीन्स को प्रवेश करवाकर इसे तैयार किया गया है। यह जीन मिट्टी के बैक्टीरिया बैसिलस थुरिंजिनेसिस से लिया गया है। बैंगन की इस प्रजाति के बारे में दावा किया जाता है कि यह लैपिडोपटेरान नाम के कीटों जैसे ब्रिंजलफ्रूट और शूट बोअरर (ल्यूसिनोड्स ओर्बोनालिस) व फ्रूट बोअरर (हेलीकोवर्पा आर्मिगेरा) से प्रतिरोधक क्षमता से युक्त है।

भारत में बीटी बैंगन का विकास मेसर्स मायको (महाराष्ट्र हाइब्रिड सीड्स कंपनी) के साथ तमिलनाडु कृषि यूनिवर्सिटी व धारवाड़ कृषि विज्ञान यूनिवर्सिटी ने मिलकर किया है। बीटी बैंगन के विकास में मायको के सनग्रो बीजों का अहम योगदान रहा है। भारत में यह पहली फसल है, जिस पर व्यापक पैमाने पर मैदानी परीक्षण किए गए हैं। बीटी बैंगन को परिवर्तित करने का काम वर्ष 2000 में शुरू हुआ था। मायको ने इस तकनीक का सब लाइसेंस यूएसएड से सहायता प्राप्त एक कार्यक्रम के तहत दिया था। सब लाइसेंस कोर्नेल यूनिवर्सिटी की अगुवाई वाली एबीएसपी2 प्रोजेक्ट (सार्वजनिक और निजी क्षेत्र का सहायता संघ) द्वारा तमिलनाडु कृषि यूनिवर्सिटी, धारवाड़कृषि विज्ञान यूनिवर्सिटी और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ वेजिटेबल रिसर्च वाराणसी को दिया गया था। तकनीक का यह हस्तांतरण मुफ्त में किया गया था और इसके तहत सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं को बीटी बैंगन की विभिन्न प्रजातियों का विकास, उसे उगाने और वितरण की जिम्मेदारी दी गई थी। यह लागत के बदले कीमत फॉर्मूले के तहत किया गया। मायको के अलावा भारतीय कृषि अनुसंधान केंद्र के तहत बायोटेक्नोलॉजी के नेशनल रिसर्च सेंटर भी बीटी बैंगन पर शोध कर रहा है। संस्थान ने क्राय1एबी जीन्स की मदद से एक बीटी एगप्लांट विकसित किया है। इसके बारे में दावा किया गया है कि यह फ्रूट बोअरर कीट के हमले को 70 फीसदी तक नियंत्रित कर सकता है। 1998/99, 1999/2000 और 2000/2001 में इसी इंस्टीट्यूट ने बीटी बैंगन का नियंत्रित वातावरण में कृषिजन्य परीक्षण भी किया था। 2003 में इन्हें दिल्ली, करनाल, पुणे, तमिलनाडु कृषि यूनिवर्सिटी और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ हॉर्टिकल्चर रिसर्च जैसे पांच स्थानों पर मैदानी परीक्षण करने की अनुमति दी गई थी। महाराष्ट्र के जालना स्थित एक अन्य कंपनी बेजो शीतल भी बीटी बैंगन पर काम कर रही है।

भारत बैंगन और उसके एग प्लांट का मूल सृजक है। इतिहास गवाह है कि भारत में पिछले 4000 साल से बैंगन की खेती होती आ रही है। यहां लोगों के सबसे पसंदीदा भोजन में एक है।

परीक्षणकर्ता कंपनी का दावा है कि बीटी बैंगन के प्रयोग में बायोसेफ्टी नियमों का ध्यान रखा था। कंपनी द्वारा जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि ट्रांसजेनिक फसल के साथ सब कुछ ठीक है, लेकिन सिविल सोसायटी समूहों ने बीटी बैंगन को लेकर कई चिंताएं जताई हैं। सबसे बड़ी चिंता बीटी बैंगन की सुरक्षा को लेकर है। मानव स्वास्थ्य व अन्य जीवधारियों पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में भी कई अहम सवाल खड़े किए गए हैं। इसके अलावा बैंगन जैसी फसलों पर जेनेटिक इंजीनियरिंग को अपनाने से मौजूदा जैव विविधता पर असर बेहद खतरनाक हो सकता है। यही नहीं, बीटी बैंगन के बारे में लिए गए सभी फैसले कंपनी के आंकड़ों पर आधारित हैं, न कि किसी स्वतंत्र शोध पर।

भारत के सुप्रीम कोर्ट में जीई

अरुणा रोड्रिग्ज और तीन अन्य याचिकाकर्ताओं ने 2005 में सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका दायर की थी। यह याचिका सुप्रीम कोर्ट के उस निर्देश पर आधारित थी, जिसमें कहा गया था कि सितंबर 2006 के बाद से देश में जीएम फसलों का और कोई परीक्षण नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ताओं ने कोर्ट के सामने जीई तकनीक के कुप्रभाव को दर्शाने वाले सैंकड़ों पृष्ठ के प्रमाण पेश किए थे। जिन आधारों पर याचिकाकर्ता कोर्ट के सामने मामले की पैरवी कर रहे हैं, वे इस तरह हैं:

- कई वैज्ञानिक प्रमाण इस तकनीक की सुरक्षा पर संदेह पैदा करते हैं। ऐसे में सरकार की नाकामी मनमानीपूर्ण और अनुचित है।
- जेनेटिक तकनीक का उपयोग और जेनेटिकली मॉडिफाइड ऑर्गेनिज्म्स को पर्यावरण में छोड़ने में सावधानी बरते जाने वाले सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए। इन सिद्धांतों में कहा गया है कि नई और अनजानी तकनीकों का जीवधारियों पर प्रयोग करते समय मानव और जीव जंतुओं के स्वास्थ्य पर किसी भी तरह के हानिकारक प्रभाव को रोकने के लिए हर संभव सावधानियां बरती जानी चाहिए।
- जिन जीएमओ को पर्यावरण में छोड़ने की अनुमति दी गई है, उनका

किसी स्वतंत्र एजेंसी और वैज्ञानिक रूप से सक्षम संस्था द्वारा बायोसेफ्टी का पर्याप्त ध्यान रखते हुए पारदर्शी तरीके से परीक्षण कराया जाए और लोगों को भी इनकी जानकारी दी जाए। यह कि बायोसेफ्टी का समुचित वैज्ञानिक परीक्षण कराए बिना किसी भी जीएमओ को पर्यावरण में छोड़ना अवैधानिक है।

- चूंकि भारत भी सीबीडी का हस्ताक्षरकर्ता देश है और इसके प्रावधानों में कोई मतभेद नहीं हैं, ऐसे में ये प्रावधान देश के कानूनों में सहायक भूमिका अपना सकते हैं, साथ ही ये लोकहितकारी भी हैं। भारत सीबीडी के प्रावधानों से बंधा हुआ है।
- भारत कार्टाजेना प्रोटोकॉल का हस्ताक्षरकर्ता होने के कारण इसके प्रावधानों के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध है। कार्टाजेना प्रोटोकॉल बायोसेफ्टी के मसले पर एक बाध्यकारी अंतरराष्ट्रीय समझौता है। इस समझौते का केंद्रीय सिद्धांत इसमें शामिल किए गए सावधानी बरतने वाले नियमों पर आधारित है। इसमें कहा गया है कि जीन तकनीक के विपरीत प्रभावों के बारे में अपर्याप्त वैज्ञानिक जानकारी और ज्ञान के कारण होने वाली वैज्ञानिक अनिश्चितता से अनुबंधित पार्टी को फैसले में प्रतिकूल प्रभाव डालने से नहीं रोका जा सकता है। साथ ही इसमें पड़ने वाले विपरीत प्रभावों को टालना/कम करना भी संभव नहीं हो पाता है।
- कार्टाजेना प्रोटोकॉल का हस्ताक्षरकर्ता होने के कारण भारत को इसके प्रावधानों के प्रति वचनबद्धता जताते हुए देश में एक बेहतर सेफ्टी प्रोटोकॉल लागू करना चाहिए—एक ऐसा प्रोटोकॉल, जो विश्वसनीय हो, स्वतंत्र, वैज्ञानिक रूप से अच्छा, पारदर्शी हो, साथ ही इसमें सावधानीमूलक सिद्धांतों को विस्तार से शामिल किया गया हो, सामाजिक—आर्थिक मामलों में पड़ने वाले दीर्घावधि के असर का आकलन करने वाला हो और जिसमें फैसला लेने व आकलन के समय जन भागीदारी पर जोर दिया गया हो।
- प्रोटोकॉल के प्रभावी अमल और सावधानीमूलक सिद्धांतों को सही तरीके से लागू करने के लिए यह जरूरी है कि जीएम खाद्य पदार्थों व उत्पादों के लिए एक लेबलिंग तंत्र स्थापित किया जाए।

- यह भी जरूरी है कि परीक्षण किए बिना या प्रमाणीकृत कर जीएम फ्री का लेबल लगाए जाने तक देश कि किसी भी बायोलॉजिकल ऑर्गेनिज्म, खाद्य या पशु आहार का आयात प्रतिबंधित कर दिया जाना चाहिए।
- उपरोक्त दलीलों के आधार पर कोर्ट में याचिका के जरिए आग्रह किया गया है कि, केंद्र सरकार को निर्देश दिया जाए कि आगे बताई गई सावधानियों के बिना आयात, निर्माण और किसी अन्य आधार पर जीएमओ के उपयोग व उन्हें पर्यावरण में छोड़े जाने की अनुमति न दी जाए।

1. जीएमओ के लिए जरूरी और इस बारे में प्रस्तावित प्रोटोकॉल को जारी करने से पहले जीईएसी उसे तैयार करने का काम करे । इससे पहले इसके बारे में सार्वजनिक तौर पर नोटिस जारी करके जनसुनवाई की जाए।
2. जीएमओ के लिए सभी तरह के बायोसेफ्टी टेस्ट को अनिवार्य किया जाए।
4. उपर लिखे प्रोटोकॉल के आधार पर ही परीक्षणों को निर्धारित किया जाए। विभिन्न एजेंसियां, स्वतंत्र विशेषज्ञ समितियां भी इन्हीं प्रोटोकॉल का पालन करे। बाद में इन्हें सार्वजनिक किया जाए।
5. केंद्र सरकार किसी बायोलॉजिकल ऑर्गेनिज्म, खाद्य पदार्थ या पशु आहर के आयात की इजाजत तब तक न दे जब तक कि निर्यातक देश जीएम फ्री का लेबल लगाकर इसे प्रमाणित नहीं करता।
6. केंद्र सरकार यह नियम बनाए कि जीएमओ का उत्पादन करने या इसे बेचने वाले को उन पर इस तरह का लेबल लगाना आवश्यक हो।
7. आदरणीय कोर्ट इस मामले में अन्य प्रकार के जो भी आदेश ठीक समझे, उसे परिस्थितियों व आंकड़ों को देखते हुए जारी करे।

वर्ष 2005 से मामले की दोबारा सुनवाई के बाद सुप्रीम कोर्ट ने इस

संबंध में कई आदेश जारी किए हैं।

- मई 2006 में कोर्ट ने कहा कि जीई उत्पादों के बारे में मंजूरी देने में केवल जीईएसी ही सक्षम अधिकारी है (इससे मैदानी परीक्षणों की अनुमति देने के लिए आरजीसीएम और डीबीटी को अधिकृत किया गया था।) कोर्ट के इन आदेशों के बाद भी तस्वीर नहीं बदल सकी और डीबीटी द्वारा दी गईं स्वीकृतियों पर जीईएसी अपनी मुहर लगाता गया, जो हितों में आपसी टकराव का एक ज्वलंत उदाहरण है।
- सितंबर 2006 में सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक अहम फैसले के जरिए देश में जीई उत्पादों के मैदानी परीक्षणों पर रोक लगा दी।
- अक्टूबर 2006 में कोर्ट ने दिल्ली यूनिवर्सिटी द्वारा सरसों के मैदानी परीक्षणों को अनुमति तो दी, लेकिन कुछ सावधानियां बरतने की हिदायतें भी दी।
- आठ मई 2007 को सुप्रीम कोर्ट ने जीईएसी को कुछ शर्तों के साथ मैदानी परीक्षण करने की अनुमति दे दी। इनमें जीएम फील्ड ट्रायल से अन्य फसलों के लिए कम से कम 200 मीटर की दूरी बनाए रखने, प्रत्येक परीक्षण के लिए एक वैज्ञानिक की नियुक्ति करने की शर्तें शामिल हैं। इस वैज्ञानिक को जीएम सामग्री को ग्रीन हाउस से बाहर लाकर मैदानी परीक्षण करने तक के काम की निगरानी की जिम्मेदारी सौंपी गई। इस दौरान किसी तरह के संक्रमण की पहचान और उसे फैलने से रोकने के लिए विशिष्ट संक्रमण परीक्षण प्रोटोकॉल को मान्य करने की भी बात कही गई थी।
- 13 फरवरी, 2006 को जब याचिकाकर्ता ने कोर्ट में जीईएसी के खिलाफ पर्याप्त सुबूतों के साथ यह कहते हुए अपील की कि सवीकृति देने में कोर्ट के आदेशों की अवहेलना की जाती है, तब कोर्ट ने जीईएसी को इस संबंध में आवेदन दायर करने और जानी–मानी मॉलिक्यूलर बायोलॉजिस्ट डॉ. पुष्पा भार्गव और मशहूर कृषि विज्ञानी डॉ. एमएस स्वामीनाथन को अगली सुनवाई के दौरान बुलाने को मंजूरी दी। जीईएसी को अनुमति दी गई कि वह इस मामले में विधिसम्मत कोई भी आवेदन स्वीकार कर सकता है और सभी पहलुओं को देखते हुए उपयुक्त फैसला ले सकता है। इसमें बायोसेफ्टी

का मामला भी शामिल है। जीईएसी को उन शिकायतों पर भी गौर करने को कहा गया, जिसमें विशेषज्ञों ने कहा था कि ओपन एअर फील्ड ट्रायल से पर्यावरण को नुकसान पहुंच सकता है और संक्रमण हो सकता है। कोर्ट ने जीईएसी को अनुमति देने के संबंध में अपनी गाईडलाइन को वेबसाइट पर प्रकाशित करने को भी कहा।

इस पुस्तिक के लिखे जाते समय भारतीय नियामक कई गाईडलाइनों को नए सिरे से लिखने की कोशिश कर रहे थे, जिसमें ओपन एअर फील्ड ट्रायल का गाईडलाइन भी शामिल है। इसके अलावा टॉक्सिकोलॉजी और एलर्जेनिसिटी के परीक्षण और एफएसएसए के बारे में भी नया तंत्र स्थापित कर उसे स्वास्थ्य मंत्रालय के नए कानून में शामिल करने पर विचार किया जा रहा था।

भारतीय कृषि में जीई का विकल्प

कृषि में अपनाए जा रहे जीई फसलों के ज्यादातर गुण कीटों के प्रति उनकी प्रतिरोधक क्षमता और खरपतवार के लिए उनकी सहनशक्ति के रूप में हमारे सामने है। इस तकनीक के बारे में यह भी प्रचार किया जाता है कि यह दुनिया में भूख और कुपोषण की समस्या को खत्म कर सकता है (क्योंकि इससे फसलों की पैदावार अधिक होती है और खाद्य पदार्थों की पोषकता भी ज्यादा हो जाती है)। इसके बारे में यह भी कहा जाता है कि यह पर्यावरण की कई समस्याओं को भी सुलझा सकता है (सूखे और खारेपन के लिए प्रतिरोधकता के कारण)। पर असलियत कुछ और है।

पेस्ट मैनेजमेंट, यानी कीटनाशकों के खिलाफ प्रबंधन कीटों और उनके जीवनचक्र को समझने का मामला है। साथ ही कीटों के हमले और उनसे जुड़े अन्य कारकों, जैसे मोनोक्रॉपिंग, रासायनिक खाद का उपयोग आदि को समझना भी जरूरी है। इसके बजाय केवल एक ही कीट को निशाना बनाने से तकनीक के जल्दी ही निष्प्रभावी हो जाने का खतरा रहता है, क्योंकि कीट भी जल्दी ही अपनी प्रतिरोधक क्षमता का विकास कर लेते हैं (जैसा कि जीई और इसके लिए बताए गए

कीटनाशकों के मामले में हुआ है)। ऐसे में पेस्ट मैनेजमेंट ही इसका एकमात्र समाधान है। फसल की इकोलॉजी पर कीटों के प्रकोप के बारे में किसानों की जानकारी इस तरह की हो कि वे नैसर्गिक स्रोतों और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्रियों से कीटों पर नियंत्रण कर सकें तो वह ज्यादा स्थिर और कारगर समाधान होगा। ऐसे हजारों किसान हैं जो अपनी फसल पर कीटों के प्रकोप का समाधान इन्हीं तरीकों से करते हैं। आंध्रप्रदेश में तो महिला स्व सहायता समूहों ने 2007 में करीब सात लाख हेक्टेयर जमीन पर कम्युनिटी मैनेज्ड सस्टेनेबल एग्रीकल्चर (सीएमएसए) नामक प्रयास को क्रियान्वित किया है। उनके इस प्रयास को आंध्रप्रदेश के ग्रामीण विकास विभाग से आर्थिक सहायता भी मिल रही है। जहां तक खरपतवार नाशक गुण की बात है तो भारत जैसे विकासशील देश को इस पर बहुत ज्यादा माथापच्ची की जरूरत नहीं है। लाखों – लाख महिलाओं को इससे रोजगार मिलता रहा है। ऐसे में खरपतवार नाशक पौधों के जरिए खरपतवार नाशक तकनीक को बढ़ावा देने से इन महिला श्रमिकों के रोजगार पर हमला ही होगा। पर्यावरण के लिए भी यह नुकसानदेह है। कई समुदाय इन्हीं घास–फूस को भोजन के रूप में भी उपयोग करते हैं। साथ ही यह चारे के भी काम आता है। यही घास–फूस भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए बायोमास के रूप में भी कीमती साबित हो सकते हैं। कुछ मामलों में तो इनकी चिकित्सकीय उपयोगिता भी है। इकोलॉजी फार्मिंग के तरीकों के तहत इन घास–फूस को ढंकने और कंपोस्टिंग के लिए भी काम में लाया जाता है, जिससे पोषक तत्वों को एक स्थिर प्रक्रिया के माध्यम से रिसायकल करने में मदद मिलती है।

यह कई बार साबित हो चुका है और अब भी हो रहा है कि जीई तकनीक से कृषि उत्पादकता नहीं बढ़ती है। दूसरी ओर सिस्टम ऑफ राइस इंटेंसिफिकेशन (एसआरआई) ने धान जैसी फसलों की पैदावार बढ़ाकर साबित किया है और इसमें पानी आदि जरूरी तत्वों की आवश्यकता भी कम होती है। इनको देखते हुए यही लगता है कि भारत में जीई तकनीक की जरूरत नहीं है। कम से कम उत्पादकता बढ़ाने

के लिए तो बिल्कुल नहीं खाद्य पदार्थों को जीई तकनीक की मदद से मजबूती देने के वादे को इस नए उद्योग द्वारा काफी हवा दी जा रही है। गोल्डन राइस या विटामिन ए युक्त चावल जैसे जीई उत्पाद को जीई कृषि के समर्थन में एक मिसाल की तरह से पेश किया जा रहा है। हालांकि ऐसे एक जीई उत्पाद की जगह भारत में कई परंपरागत, घरेलू, गैर कृषि उत्पाद मौजूद हैं। असल में गरीबों के आहार में से ऐसे गैर कृषि उत्पादों को चरणबद्ध तरीके से खत्म करने से गांवों में लोगों को कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा उच्च पोषक तत्वों से लैस खाद्य पदार्थों की ऐसी कई परंपरागत किस्में हैं जिन्हें बढ़ावा देकर गरीबों के आहार की पोषकता बढ़ाई जा सकती है। इनमें बारीक बाजरा शामिल है। खाद्य पदार्थों की मजबूती परंपरागत कृषि से भी विकसित की जा सकती है जिसमें जीई तकनीक की कोई जरूरत नहीं है।

देश के विभिन्न हिस्सों में परंपरागत रूप से की जाने वाली जर्मप्लाज्म तकनीक में काफी विविधता है और ये सूखे/खारेपन की समस्या से भी जूझती हैं। इन तकनीकों को फिर से आगे बढ़ाने की जरूरत है, बजाय जीई के भरोसे समस्या को सुलझाने के। वास्तव में इन समस्याओं का जवाब सही समय पर सही फसल के चुनाव और उसमें से भी सही किस्म के चुनाव में है। अगर किसान को कृषि में अपना जोखिम कम करना है तो उसे एग्रो डायवर्सिटी आधारित कृषि करनी होगी।

• ••

9. एक अभियान बी.टी. कपास के विरूद्ध

मालवा-निमाड़ के अनेक जिलों में सन् 2002 से बहुराष्ट्रीय कम्पनी महिको, मानसेंटों बायोटेक लिमिटेड द्वारा जीन परिवर्तित बीटी कपास मेक 12, मेक 162, मेक 184 बाजार में उतारा गया। कम्पनियों ने सुदूर गांव तक अपने वेतनभोगी कर्मचारियों और कमीशन एजेंटों के जरिये उक्त बीजों की ब्रिकी के लिए बड़े स्तर पर प्रचार अभियान चलाया। इस प्रचार तंत्र में कम्पनी ने आक्रामक विपणन शैली का सहारा लेते हुए गांव–गांव छोटे व मझौले किसानों के बीच यह प्रचारित किया कि बीटी कपास के तीनों किस्मों को उगाने से किसानों की आर्थिक हालत देखते-ही-देखते बदल जायेगी क्योंकि इन जैव परिवर्धित कपास बीजों में अमेरिकी बोलवर्म (जो कि कपास फसल को नुकसान पहुँचाने वाला प्रमुख कीट है) का हमला बहुत कम होता है। साथ ही इन बीजों में इस कीट से लड़ने की क्षमता जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से विकसित की गई है। इसके साथ ही गांव के लोगों को यह समझाया गया कि बी.टी. कपास का उत्पादन 16 से 20 क्विंटल प्रति एकड़ तथा इसके रेशे की लंबाई 29 मिमी. तक होती है। कीटनाशक की न्यूनतम लागत और विपुल उत्पादन के सपने दिखाकर कम्पनी के ऐजेंटों ने ग्रामीणों में बीटी कपास के प्रति आकर्षण पैदा किया। नतिजतन 450 ग्राम वजनी बीटी कपास पैकेट 1600 रु. से 2200 रू. प्रति पैकेट के भाव बिका। किसानों के अनुभव बताते हैं कि पहले बीटी कपास की उपज ठीक-ठाक रही। कुछ स्थानों पर पौधे पीले पड़ने, डेंडू लगे पौधे उगने व अंकुरण की समस्या जरूर आयी थी, जिसे किसानों ने हवामान का असर समझकर नजरअंदाज कर दिया। सन् 2004 में कम्पनी ने अपनी मार्केटिंग को अधिक आक्रामक बनाया। तब तक एक

और कम्पनी रासी सीड्स की एक और किस्म रासी–2 भी बाजार में आ गयी थी। इस वर्ष अकेले झाबुआ जिले में 14583 पैकेट बीज की बिक्री हुई। इसके अलावा धार, बड़वानी, बुरहानपुर, खरगोन, खण्डवा आदि जिलों में भी काफी संख्या में बीटी कपास के पैकेट बेचे गये। लेकिन इस वर्ष इस बीजाई के नतीजे किसानों पर बहुत भारी पड़े। कई जगह 35 से 60 प्रतिशत तक बीटी बीजों का अंकुरण नहीं होने व खेते में डेंडू लगे पौधे उगने की खबर आयी है। बीज विक्रेता कहते हैं कि ऐसा मौसम की गड़बड़ी व अधिक सिंचाई के कारण हुआ।

झाबुआ जिले के अलग–अलग गांवों में किसानों के इस कड़वे अनुभव को देखते हुए क्षेत्र में आदिवासियों के बीच सक्रिय संस्था सम्पर्क, म.प्र. ने 15 किसानों के एक दल को आंध्रप्रदेश के खम्मम, बारंगल और नैल्लूर जिले के गांवों में बीटी कपास की खेती के अनुभवों को जानने के लिए भेजा। उल्लेखनीय है कि इन जिलों में सैकड़ों किसान परिवार बीटी कपास के नकारात्मक नतीजों के चलते कर्ज में डूब गये थे। 4 अप्रैल से 9 अप्रैल 2005 तक आंध्रप्रदेश के तीनों जिलों के विभिन्न गांवों में झाबुआ के किसानों के 15 सदस्यीय दल ने भ्रमण कर बीटी कपास की खेती की जमीनी सच्चाई को जाना। आंध्रप्रदेश के किसानों ने इन्हें बताया कि बीटी के सुनहरे दावों में उलझकर वे बर्बाद हो गए हैं। झाबुआ लौटकर उन्होंने अपने अनुभव गांव–गांव चौपाल पर सुनाए। अप्रैल के प्रथम सप्ताह में भ्रमणकारी 15 किसानों ने ग्रामस्तर पर बैठकें आयोजित कर आंध्रप्रदेश में बीटी कपास की खेती की तबाही का आंखों देखा अनुभव ग्रामीणों को बताया।

इसके बाद लगभग 90 गांवों की चौपाल में यह बात उठी कि बीटी कपास के खतरों के प्रति ग्रामीणों को सचेत करने के लिए नियोजित अभियान चलाया जाना चाहिए। 23 अप्रैल 2005 को पेटलावद में किसानों ने निर्णय लिया कि 'बीज स्वराज' के माध्यम से वे बीटी विरोध मुहिम को आगे बढ़ायेंगे। झाबुआ में कार्यरत लोक जागृति मंच, काश्तकार संघ, जैसे किसानों के प्रतिनिधि संगठन बीज स्वराज अभियान में शामिल हुए हैं। इसी बीच झाबुआ में सम्पर्क, म.

प्र. तथा धार में 'वास्प' संस्था ने बीटी कपास की खेती को लेकर एक गहन अध्ययन किया। इस अध्ययन के नतीजे चौकाने वाले थे। किसानों के साथ सहभागी स्तर पर किए गए इस अध्ययन के नतीजे बता रहे थे कि बीटी कपास की विभिन्न किस्मों का प्रति एकड़ 16 से 20 क्विंटल उत्पादन के विरूद्ध मात्र 5 से 7 क्विंटल उत्पादन हो रहा था। गुणवत्ता भी नहीं थी। इस वजह से बाजार में भाव भी बहुत कम मिली। इसके अलावा बोलवर्म और दूसरे कीटों के हमलों के कारण कीटनाशक भी काफी छिड़कना पड़ा। इससे किसानों को काफी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा। अध्ययन के नतीजों से विचलित किसानों ने 29 अप्रैल 2005 को मध्यप्रदेश के कृषि मंत्री गोपाल भार्गव के निवास पर आकर ज्ञापन सौंपा जिसमें मांग की गई कि बीटी की सभी किस्मों को मध्यप्रदेश में प्रतिबंधित किया जाए एवं पीड़ित किसानों को मुआवजा दिया जाये। किसानों ने राजधानी भोपाल में जिला मुख्यालयों पर बीटी कपास के विरूद्ध 7 मई 2005 को झाबुआ और धार जिलों के मुख्यालयों पर प्रदर्शन किए। झाबुआ में लगभग 1500–2000 लोगों ने जिला मुख्यालय पर रैली निकालकर बीटी कपास की होली जलाई तथा मुख्यमंत्री के नाम जिला अधिकारी को ज्ञापन सौंपा। इसमें मांग की गई कि बीटी किस्मों को दी गई व्यापारिक अनुमति को राज्य सरकार तत्काल वापस करे। इसी बीच दिल्ली में 4 मई 2003 को जैनेटिक इंजीनियरिंग एप्रुवल कमेटी की बैठक आयोजित की गई थी जिसमें मध्यप्रदेश में बीटी कपास को पर्यावरणीय दृष्टि से अनुमति दी जाना थी। इस अवसर पर धार, झाबुआ, बड़वानी के सैकड़ों किसानों ने जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रुवल कमेटी को फैक्स संदेश भेजकर बीटी कपास को मध्यप्रदेश में अनुमति नहीं दिये जाने की गुहार लगाई। उत्तेजित किसानों का गुस्सा धार, झाबुआ में 7 मई 2005 के प्रदर्शन के दौरान बीटी कपास की होली जलाने के रूप में प्रकट हुई। इसी दौरान झाबुआ में पेटलावद, रायपुरिया, बामनिया, बोलासा, बरवेट, जामली, बावड़ी, करड़ावद, रामगढ़ तथा बड़वानी के तलुन, पिपली, बोरलाय, कुक्षी, सेंधवा, सांकड़

व रतलाम के ततरी मुआवजाघर जैसे दर्जनों कस्बों में किसान चौपाल बैठकें आयोजित कर अपने विरोध को तीव्र कर अपनी बात सरकार तक पहुंचाने की रणनीति बनाते रहे हैं। झाबुआ, धार बड़वानी जिलों के किसानों को जमीनी स्तर पर बीटी विरोध जारी था कि मध्यप्रदेश सरकार ने 16 मई 2005 को महिको की इन पुरानी किस्मों सहित सात अन्य किस्मों को भी व्यापारित अनुमति प्रदान कर दी। अब बीटी कपास की कुल 10 किस्में बाजार में उतर आयी हैं। इस स्थिति में चलते मालवा—निमाड़ के किसान संगठनों का एक प्रतिनिधि मण्डल 26 मई को फिर भोपाल पहुंचा। मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल गौर से मिलकर मांग की कि सरकार बीटी कपास की खेती की पुर्नसमीक्षा करे। समीक्षा दल में किसानों, पत्रकारों, स्वतंत्र कृषि वैज्ञानिकों को भी शामिल करे। इसके साथ ही कम्पनी के साथ ऐसे सख्त अनुबंध सुनिश्चित करे जिसमें किसानों के नुकसान की भरपाई की शर्तें लागू हों। इसके बाद आंध्रप्रदेश सरकार ने महिको बीज कम्पनी को काली सूची में डाला और किसानों की नुकसान की भरपाई के लिए 4.5 करोड़ की राशि देने का आदेश जारी किया। उससे उत्साहित मालवा—निमाड़ के किसानों ने प्रदेश के मुख्यमंत्री और राज्यपाल को पुनः ज्ञापन भेजकर मांग की कि प्रदेश सरकार भी आंध्रप्रदेश सरकार की तरह इस पर रोक लगाए। 5 मई को किसानों के प्रतिनिधि मंडल ने बीज स्वराज अभियान की ओर से राज्य सरकार ने सूचना के आधार के तहत् यह मांग की कि सरकार वह रिपोर्ट को सार्वजनिक करे जिसके आधार पर इस वर्ष बीटी कपास को पुनः व्यवसायिक अनुमति प्रदान की गई जबकि पिछले अनुभव दिल दहलाने वाले रहे हैं। 15 मई को रायपुरिया मे ंउक्त संगठनों ने विशाल किसान सम्मेलन आयोजित कर अपने—अपने गांवों को बीटी बीज मुक्त गांव बनाने का संकल्प लिया। इसी दिन इन्दौर में मालवा—निमाड़ की 15 से अधिक संस्थाओं ने बैठक आयोजित कर बीटी विरोध आंदोलन की समीक्षा की व भावी रणनीति बनाई।

• • •

10. आप/हम क्या कर सकते हैं?

हम सभी खाद्य पदार्थों के उपभोक्ता हैं। एक उपभोक्ता के तौर पर आज से ही शपथ लें कि हम जीएम खाद्य पदार्थों को नकार देंगे, भले ही उन्हें इस दोषपूर्ण व्यवस्था के तहत भारत में उगाने की अनुमति क्यों न दी गई हो। जब हम अपने लिए खाने का सामान खरीदें, जिसमें पैकेट वाले उत्पाद भी शामिल हैं, तो यह जानने की पूरी कोशिश करें कि ये जीई मुक्त हैं। खासकर तरकारियां, चावल, सोया, कॉर्न, कपास के बीज, अरंडी जैसे उत्पादों पर विशेष रूप से निगाह रखें। जैविक खाद्य पदार्थ उपयोग में लाएं। उन किसानों की सहायता करें, जो इकोलॉजिकल तरीके से खेती करते हैं। यह सहायता आप/हम उनके द्वारा उगाए गए खाद्य पदार्थों को खरीदकर भी कर सकते हैं।

- अगर किसानी करते हैं तो कसम खाएं कि अपने खेत में कोई जीएम बीज नहीं बोएंगे। अपने समुदाय में बीज बैंक खालने की कोशिश करेंगे। अपनी फसल में विविधता लाएंगे और बीज बैंक की सहायता से फसल की गुणवत्ता को बढ़ाएंगे।
- अपने आसपास के किसानों और उपभोक्ताओं से बातचीत करें, ताकि वे जीई को खेती के लिए अपनाने के बारे में पूरी समझदारी से फैसला करें।
- लोगों के साथ मिल कर खुद भी एक जीई मुक्त जोन/समुदाय/गांव/स्व सहायता समूह/जिला आदि को खड़ा करने की कोशिश कर सकते हैं। इस मामले में सरकार के नीतिगत निर्णय लेने की प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं है।
- जहां फैसला आम लोगों के हित व संसाधनों से जुड़ा हुआ हो, वहां तत्परता से निर्णय लेना जरूरी है। यह पंचायत का

संवैधानिक अधिकार है कि वह खुद को जीएम मुक्त करने के बारे में प्रस्ताव पारित करें और वह भी सार्थक बहस के बाद।

- स्थानीय पार्षदों, विधायकों, सांसदों संपर्क में रह कर भी इस अपरिवर्तनीय तकनीक के प्रभाव के बारे में जाना जा सकता है। मौका मिलते ही इस तकनीक के बारे में सार्वजनिक बहस की शुरुआत की जा सकती है। देश के किसान और उपभोक्ता इस तकनीक के नुकसान के बारे में समझने लगेंगे तो इसे खारिज करने के बारे में सोचेंगे और मानेंगे भी। राजनैतिक दलों को भी अपने वोटिंग अधिकारों का हवाला देते हुए इस बारे में पुख्ता फैसला करने को कहा जा सकता है।
- राज्य की सरकारों को भी कृषि क्षेत्र में एक निश्चित राय बनाने को विवश किया सकता है। इस मामले में किसानों के पक्ष में निर्णय लेने को भी राजी कर सकते हैं। उन्हें इस बात के लिए भी राजी करने की कोशिश की जा सकती है कि वे अपने राज्य को जीमए मुक्त घोषित कर दें।
- अपने आसपास किसी भी गोपनीय मैदानी परीक्षण पर निगाह रखना जरूरी है। ऐसे परीक्षणों को शुरू करने के लिए जीईएसी को भी नियमानुसार पंचायत की अनुमति लेनी होती है। पंचायतों को इन परीक्षणों की जानकारी होना जरूरी है। अगर किसी राज्य या जिले में जीई से जुड़े मसलों की निगरानी के लिए ईपीए के तहत कोई तंत्र नहीं है, तो इसके लिए अपनी ओर से दबाव बनाना चाहिए ताकि ऐसे तंत्र का गठन किया जा सके।
- मीडिया के लोगों को भी इस मामले में पूरी जानकारी प्राप्त करने को प्रेरित करना चाहिए ताकि वे इस तकनीक के बारे में सार्वजनिक बहस शुरू करने में मदद कर सकें।
- मीडियाकर्मियों को चाहिए कि वे इस तकनीक के बारे में कानूनी प्रावधानों के अमल पर पुख्ता निगरानी रखें।

• ••

आप प्रयोगशाला का चूहा मत बनिए
जी.एम. खाद्यान्न को ठुकराईये
www.I AM NO LAB RAT.com
मैं प्रयोगशाला का चुहा नहीं हूँ
खतरा
बी.टी.बैं

बी.टी.
बैंगन